अन्तिम-सत्य की सहज-धारा

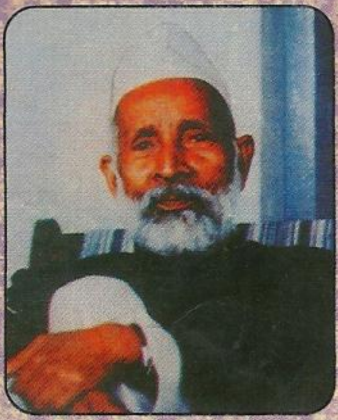

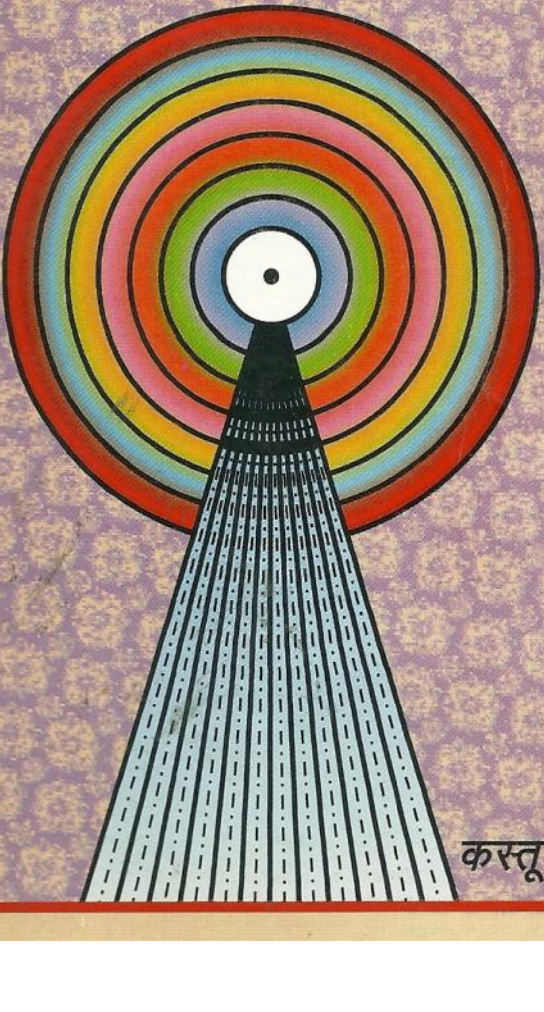

कस्तूरी बहिन

अन्तिम-सत्य की सहज-धारा

कस्तूरी बहिन

प्रथम संस्करण : सितम्बर, 2006
500 प्रतियाँ

मूल्य : **Rs. 50/-**

प्रकाशक : श्री जी. डी. चतुर्वेदी
सी. 830 ए, 'पारिजात'
एच. रोड, महानगर,
लखनऊ (उ.प्र.)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक : एन्टेक्स प्रिंटर्स
10–ए, बटलर रोड, डालीबाग,
लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष : 0522–2205070, 2207920
फैक्स : 0522–2205070

विषय-सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1.	प्रस्तावना	1
2.	समर्पण	5
3.	दिव्य अवतरण	6
4.	अख़लाक	20
5.	सहज–मार्ग दर्शन (भेद) है ईश्वर का	24
6.	दिव्य अनुसंधान (Research)	39
7.	अनुभूतियाँ शिक्षा बन गई	59
8.	विभिन्न दैविक–रीजन्स	78
9.	अनमोल दैविक रत्न	94

प्रस्तावना

मानव की अनेक खोजों द्वारा आज अनेक देशों की यात्रा समस्त हित सुलभ हो गई हैं– उसी प्रकार आज प्रकृति की आवश्यकतानुसार एवं दैविक–इच्छा की पूर्ति हेतु दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी ने आध्यात्मिक–क्षेत्र में सहज–मार्ग साधना को आधार बनाकर आदि से लेकर अन्तिम–सत्य तक की अनन्त यात्रा को मानव–मात्र हित सुलभ एवं सरल बना दिया है। आदि से लेकर भूमा अथवा Ultimate जिनका नाम मात्र ही किसी ने सुना होगा– आज सहज मार्ग साधना द्वारा हर एक की जानकारी में आने लगा है। मैंने पाया कि कभी जिस नाम को सुनकर मैं चौंक उठती थी कि भगवान माया–पति हैं। श्रीबाबूजी की research ने जब समक्ष में इस रहस्य को उज्जवल किया तो मैं गद्‌गद् हो गई थी मैंने पाया कि अवतारों का अवतरण – 'महामाया' के क्षेत्र से धरा पर होता हैं– महामाया ईश्वरीय–शक्ति की आंशिक शक्ति है यही कारण है कि ईश्वर मायापति कहा जाता है। भक्तों ने ईश्वर का साक्षात्कार स्वयं तो पाया है किन्तु ईश्वर तक पहुँच पाने में दशाओं की खोज अथवा विषय का लेखन किसी ने नहीं दे पाया है। संत कबीर ने अपनी दशा के बारे में भी कुछ लिखा है जिनको उनके पदों द्वारा जाना जा सकता है। भक्ति से ही भगवान मिलते हैं। यह हम सबको ज्ञात है, किन्तु सहज–मार्ग–साधना में भक्ति कैसे पैदा हो, यह खोज बाबूजी ने ही की है। फिर मैंने पाया कि भक्ति को disturb करने वाले विचारों को दूर करने वाला एवं प्रेम को बढ़ाने वाला हृदय में ईश्वर की मौजूदगी का ध्यान, अभ्यासी में भक्ति को स्वतः ही उत्पन्न कर देता है। पुनः उसमें लगन बढ़ाने वाले भाव की खोज करके श्रीबाबूजी ने मानों एक तरह से Divine की समीप्यता से मानव–अंतर का परिचय करा दिया है। इतना ही नहीं कौन

लेखिनी आज यह लिखने को उठ पायेगी कि दिव्य विभूति ने अजेय मानव–अहं (जिसे विजय कर पाना असंभव है) एवं उसके हर स्तर को तौलते हुये साक्षात्कार हित अभ्यासियों को तैयारी के लिए कुल अहं को सोलह circles में कैद कर लिया अर्थात् अपनी मुट्ठी में कर लिया है। इस research को एक मात्र Divine चमत्कार के नाम का गौरव ही दिया जा सकता है। इतना ही नहीं, मन–रीजन की यात्रा की अनुभूति भरी stages एवं mind region (हिरण्य गर्भ) की अनुभूति भरी खोज करके मानों उन्होंने मानव के समक्ष हर Region की असलियत को भी स्पष्टता प्रदान की है।

मैंने पाया कि "अभ्यासी के लिये दशाओं को अनुभूतियों द्वारा स्पष्ट कर पाना तो एक बात है, परन्तु अपनी research द्वारा कुल Regions में व्याप्त हालत एवं शक्ति के योग का स्पष्टीकरण दे पाने हेतु यह लेखिनी मात्र उनके ही दिव्य–कर–कमलों का स्पर्श पाकर लेखन द्वारा समस्त के समक्ष उज्ज्वल कर सकी है। इतना ही नहीं, ब्रह्मांड–मंडल एवं पारब्रह्मांड–मंडल के भेद को भी अपनी research द्वारा मेरी अनुभूति में उतारा तब मुझे पता लगा कि ब्रह्मांड–मडंल वह स्थान हैं जहाँ धरती पर घटने वाली घटनाओं का दर्शन पहले ही मिल जाता है। अब मैंने भगवद्–गीता में लिखित उस प्रसंग की बारीकी को भी पहचान लिया है जिसे–दिव्य–दृष्टि देकर भगवान–कृष्णजी ने अर्जुन को दिखाया था कि 'अर्जुन देख ये तो पहले ही मरे हुये हैं, तू तो निमित्त बन जा'। सहज–मार्ग साधना की एक विशेषता मैंने यह भी पायी है कि ध्यान में यह विचार देकर कि "हृदय ईश्वरीय–प्रकाश से प्रकाशित है।' मानों प्रथम दिन से ही अंतर–नेत्रों में दिव्य–दृष्टि की प्राप्ति को सम्भव बनाया है, ताकि आगे उन्नति में दिव्य–दशाओं के दर्शन एवं मिलन के लिए हमें प्रतीक्षा न करनी पड़े। पार–दृष्टि अर्थात् ब्रह्मांड–मंडल को cross करके तब जो फैलाव उनकी research

समक्ष में रखती है, उसकी विशेषता यह है कि अनुभव बराबर इस दशा में ही मगन रहने लगता है कि 'उसकी कृपा का पार नहीं है' क्योंकि उनकी अर्थात् दैविक–दशा एवं दैविक–दृष्टि का अनुभव भी उनकी कृपा का पार नहीं पाता था। तब बाबूजी ने इसका परिचय 'पारब्रह्मांड–मंडल' के नाम से उजागर किया था। पश्चात् भक्ति की तीन गहन–स्थितियों को अपनी दैविक research द्वारा अपनी इस अभ्यासी बिटिया में उतारकर अपनी ओर से नाम दिया है। स्थितियों की गंभीरता को सँवारते हुये प्रथम 'इब्द' (भक्ति में डूबापन), दूसरी प्रपन्न (मोबिद) अर्थात् अनन्य भक्ति में डूबी हुई बेसुध–अवस्था फिर तीसरी आती है प्रपन्न–प्रभु, अर्थात भक्ति की इन अवस्थाओं को भी पीकर मानों सशक्त एवं सबल–अवस्था हो जाती है। जैसे भक्त प्रहलाद की दृढतामयी किन्तु बेसुध अवस्था थी। चाहे पर्वत से गिराओ या आग में जलाओ किन्तु सबल–भक्ति का कवच पहने वे निर्भीक–बालक के सदृश स्थिर रहे। भक्तिमती मीराबाई सबल–शक्तिदायनी भक्ति की ओढ़नी में सजी हुई बेसुध रहीं चाहे विष हो या सर्पदंश हो वे निर्भीक स्थिरता की मूर्ति बनी रही। इसके पश्चात् ही गीता की परम गति का श्रृंगार हमें मिलता है अर्थात् स्थिति–प्रज्ञ' दशा ही मानो हमारा स्वरूप बन जाती है। किन्तु उनकी research ने यह भी बताया है कि मंडल (Regions) की हालत में शक्ति की सीमा होती है। भक्ति असीमित होती है। उनकी दिव्य research ने Divine की अति सामीप्यता का भेद बताने के लिये ही मानव Identity को अनुभव–गम्य बनाया है। फिर Identity cannot Identify itself की दशा को अभ्यासी में प्रवेश देने के पश्चात् भूमा अथवा Ultimate के सप्त–द्वार को भी सेविन–रिंग्स के नाम से अपनी पुस्तक में उजागर कर दिया है। उनकी research ने इन हालतों की पूर्णता एवं दर्शन को भी अपनी कृपा से अनुभव–गम्यता प्रदान करके आध्यात्मिक 'अनन्त–यात्रा' नामक

पुस्तक के पाँच भागों में उतार कर दैविक–गरिमा प्रदान की है। यह सत्य भी प्रत्यक्ष हो गया है कि अंत का अंत कभी नहीं होता है क्योंकि कुछ होता ही नहीं है– श्रीबाबूजी ने इस अंतिम गति को 'संग–बेनमक' के नाम से उजागर किया है। अर्थात् पत्थर में नमक होने का एहसास होता है लेकिन नमक होता नहीं है।

सच पूछो तो भूमा की भूमि पर उनकी दिव्य–विभूति का दर्शन ही कुल दैविक **research** का दर्शन है। अनुभूति से अछूते, दर्शन से परे उनका अनुपम–दर्शन मात्र भूमा का ही गौरव है। इतना ही नहीं यहाँ मैंने अन्तिम–सत्य के इस गौरव को भी पहचान लिया है कि वे दिव्य–विभूति जो धरा पर हमारे सामने ही हमसे हिले–मिले रह रहे हैं उन्हे प्राणीमात्र के हित, अपने–नेह निमंत्रण के रूप में आदि–शक्ति भूमा के स्पन्दन ने ही पृथ्वी पर अवतरण दिया है। उस दिव्य–अनुपम नेह–निमंत्रण स्वरूप भूमा के गोपाल को सतत्–नेह की प्रार्थना के आँचल में समर्थ–सद्गुरू श्रीलालाजी ने ही सँवारा था। दैविक–इच्छा को संरक्षण देते हुए लालाजी ने उन्हें अपनी नजरों से ही पाला–पोषा, और फिर संसार को उनके हवाले कर दिया। अब हम प्राणियों का दिव्य–शक्ति के समक्ष कुछ भी प्रस्ताव नहीं है। बस प्रार्थना है कि धरा पर अवतरित –सर्वव्यापक दिव्य–विभूति के दैविक–चरणों का चुम्बन पाते हुए दिव्य–रज को धारण कर हमारे जीवन धन्य हो जायें।

वास्तव में सहज मार्ग–साधना में समाई है अनन्त यात्रा,

दैविक–अनुसंधान में अन्तिम सत्य का दर्शन भी है और उसका रहस्य भी।

अंतिम–सत्य पूर्णता है दैविक–अनुसंधान की।

●

‘समर्पण’

वास्तव में साक्षात्कार प्राण है सहज–मार्ग–साधना के अभ्यास का, अंतिम सत्य, भूमा की मुसकान का अनुपम–दर्शन है। श्रीबाबूजी महाराज के दैविक–अनुसंधान (research) के लेखन से अमरत्व पाई हुई, भक्ति रस से सराबोर एवं लय–अवस्था में लय हुई यह लेखिनी, अनगिनत दैविक–दशाओं के अनुभव–रूपी रत्नों से जटित है। दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी की दैविक–रिसर्च ने आध्यामिक–साहित्य को इसके द्वारा अंतिम–सत्य की ऊँचाई तक के दुर्लभ–लेखन का गौरव प्रदान किया है। मेरी यह लेखिनी स्वयं के निवेदन के साथ ही अनुभूतियों के रस में सराबोर हुई, दैविक अनुसंधान (research) के लेखन से विशुद्ध होकर "अंतिम–सत्य की सहज–धारा" को समर्पित है।

किन्तु! यह क्या समर्पण स्वयं बोल उठा है कि आज वह किसी की न सुनकर अपनी उस हम–संगिनी (केसर बहिन) के साथ, जिसने कुल पुस्तकों के लेखन को स्वच्छता से सँवार कर अंतिम–सत्य की गोद में बैठाया है आज ‘अंतिम–सत्य’ की सहज–धारा में समर्पण पाने जा रहा है। अरे यह क्या! संसार का साधुवाद भी पाया और दिव्य–विभूति बाबूजी के ‘आमीन’ का दिव्य–मुकुट धारण कर आज अपनी ही नहीं बल्कि संसार की केसर बहिन के साथ यह समर्पण, अंतिम–सत्य की सहज–धारा में समर्पित हो गया है।

दिव्य अवतरण

"गहन–दैविक रहस्य" के फल–स्वरूप आध्यात्मिक क्षेत्र को अन्तिम दैविक स्तर पर ले जाने हेतु हमारे बाबूजी ने मेरे समक्ष गहन दैविक रहस्य को उज्ज्वल कर के मानों समस्त के हेतु सहज–मार्ग का पथ–प्रशस्त कर दिया है। जिस प्रकार आदि–संकल्प का रूझान रचना के निमित्त होने के कारण शक्ति का प्रवाह ऊपर से नीचे आया। उसी प्रकार श्रीबाबूजी दैविक–संकल्प के प्रवाह को मानव हित लाये हैं। उनकी खोज के प्रत्येक Region के मध्य में केन्द्र की शक्ति, बिन्दु रूप में उनके दैविक संकल्प की छाया के सदृश मौजूद हैं यह सत्य मानव–मात्र के हित में श्रीबाबूजी महाराज की दैविक–खोज–कार्य द्वारा ही आज मेरे समक्ष उज्ज्वल हुआ है। उनकी इस दिव्य–खोज ने आज आध्यात्मिक क्षेत्र में आदि से लेकर अंतिम–सत्य तक की अनन्त यात्रा पूर्ण कर पाने का मार्ग सहज करके, भूमा के द्वार में प्रवेश पाने का दैविक–सौभाग्य समस्त को प्रदान किया है। धरा पर उनके दिव्य–अवतरण ने ही इस पृथ्वी के प्राणियों को मात्र सहज–मार्ग–साधना का ही सम्बल नही दिया है। वरन् मानव मात्र के हित उनके दिव्य–संकल्प के साथ ही उनकी दिव्य अमोघ–इच्छा शक्ति का दैविक प्यार भरा सम्बल भी हमें मिला है। इतना ही नहीं मैंने साधना में हमेशा उनके नेत्र द्वय की देख–रेख भरी दृष्टि में ही स्वयं को पलते हुये पाया है। यही नहीं साधना काल में उन्होंने मानों सूक्ष्मातिसूक्ष्म point की खोज के साथ मुझे हर point की दशा को अनुभव कर पाने की क्षमता भी प्रदान की थी। यह सत्य भी आज उन्होनें स्पष्ट कर दिया है कि ईश्वर सब में है, समस्त के लिये है इसीलिए उनकी यह खोज एक के लिये नही बल्कि प्रत्येक की उन्नति का सहारा है।

कदाचित यही कारण है कि पुस्तक लिखते समय मानों वर्षों पहले उन्नति में पाई हुई हर दशा स्वतः ही मेरे समक्ष खुद को बिछा देती है। ताकि मेरे 'बाबूजी की दैविक' Research द्वारा स्पष्ट हुई सूक्ष्म से सूक्ष्म गति भी समस्त के समक्ष उज्ज्वल हो जाये। यह सत्य भी सबके लिये प्रत्यक्ष हो जाये कि जो भी Research है वह समस्त के हित के लिये है और इसकी प्रत्यक्षता में उनके दिव्य-संकल्प का पुट होने से यह सब के लिये आशा बनकर हृदयों में प्रवेश पायेगी। एक सत्य और है जिसे प्रकट किये बिना मेरी लेखिनी चुप नहीं रह सकती है, वह है कि लेखन द्वारा लिख पाने की क्षमता के साथ मेरे समक्ष में चित्रों को रख कर समस्त को यह बता दिया है कि उनकी बिटिया अभी नन्हीं सी है। उनके इस दिव्य-प्यार पर भला कौन बलिहार नहीं हो जायेगा।

आप जानते हैं कि उनके प्रति लिखे उपरोक्त शब्दों के अर्थ की गहनता को किसने उजागर किया है। मानों स्वयं आदि-शक्ति के स्रोत Ultimate ने ही मेरी लेखनी द्वारा इस दैविक-रहस्य को उज्ज्वल किया है कि Unique (अद्भुत) हैं मेरे बाबूजी। धरा पर अवतरित भूमा की इस महान विभूति के गौरव को मात्र स्वय Ultimate के और कौन उज्ज्वल करता। वास्तविकता तो यह है कि आदि शक्ति में रचना के हेतु स्पन्दन के अतिरिक्त स्पन्दन महसूस ही नहीं हुआ। प्रथम विचित्रता (Uniqueness) तो यह देखें कि भूमा के गर्भ-गृह ने कभी अपने से अपनी शक्ति को पृथक होकर संसार में कार्य करने हेतु उतरते महसूस नहीं किया। यह प्रकृति का नियम है कि यदि संसार के उद्धार के सम्बन्धित कार्य की आवश्यकता पृथ्वी को होती है तो इसका रूझान ईश्वरीय-शक्ति से सम्बन्धित रहने के कारण तुरन्त उससे ही (ईश्वरीय शक्ति से) योग पा जाता है। जब-जब संसार को सुधार

की आवश्यकता हुई, समाज में शान्ति एवं साम्यावस्था लाने की आवश्यकता का स्पन्दन हुआ तो प्रकृति से सम्बन्धित होने के कारण ऋषियों की प्रार्थना ने सदैव ईश्वरीय–शक्ति का स्पर्श पाया। फलस्वरूप ईश्वरीय–शक्ति के केन्द्र के समीप, शक्ति के force के स्थान महामाया से आवश्यक–शक्ति के सहित धरा पर अवतारों का शुभ–अवतरण होता रहा है। आवश्यकतानुसार श्रेष्ठ–विभूतियाँ भी प्रकृति के कार्य हेतु आती रही हैं। यही कारण है कि अवतारों के स्वरूप हल्के दमकते नील–वर्ण के हुये हैं। कहते हैं बालक का रूप अधिकतर माता से मिलता है और महामाया की (दैविक) शक्ति के स्थान का रंग दैविक दीप्ति सम्पन्न हल्का नील–वर्ण ही है। किन्तु प्रकृति ने जब युग की गिरावट को निम्न स्तर की सीमा के भी पार देखकर मानव को अहं के गर्त के अंधेरे में डूबकर खो जाने की अवस्था में देखा तो उसे युग–परिवर्तन के हेतु विचार आया। उसने इस महत्–कार्य हेतु एक सूफी संत को ही यह दैविक कार्य सौंपा। आप यह प्रश्न कर सकते हैं कि यह कार्य ऋषियों को क्यों नही सौंपा तो उत्तर आपको मिल ही जायेगा कि जितना महान–कार्य होगा उतने ही महान व्यक्तित्त्व को उसकी पूर्ति करने के लिये धरा पर खोजना होगा। ऋषि लोग अपनी सीमा को तोड़कर पृथ्वी पर आकर महान बनने ही लालसा में रहते हैं ऐसा हम सब आध्यात्मिक साहित्य द्वारा जान चुके हैं। वैसे तो जैसा मैंने लिखा है कि संसार की स्वच्छता एवं शान्ति बनाये रखने के लिये दैविक अवतरण धरा को पावन बनाते ही रहे हैं। अवतारों का अवतरण तो धरा ने पाया है और आकाश ने देखा है किन्तु अंतिम–सत्य के आदि मनस्–पुत्र का दर्शन अब ज़माना देखेगा और अंतिम सत्य की सहज–धारा में सराबोर हो जायेगा।

किन्तु ऐसे युग–परिवर्तन हेतु दिव्यावतरण को युग की

आवश्यकतानुसार एवं दैविक प्रकृति की इच्छानुसार धरा को आलोकित करने हेतु अनन्त शक्ति के सम्बल की जरूरत थी। वैसे तो भगवान राम का अवतरण धरा के सौंदर्य को दूषित करने वाले रावण के वध के लिये हुआ था, फिर देखे कृष्णावतार, इसका हेतु तपस्या से अनेकानेक वरदानों एवं हथियारों से सुसज्जित महारथियों की दुष्ट–प्रकृति से धरा की दैविक–प्रकृति के सौंदर्य को सुरक्षित रखना था। इसीलिये यह अवतार 16 कला अथवा पहले से अधिक सामर्थ्य एवं शक्ति वाला हुआ था। आज जब मानव झूठे अहम् में डूबकर–युग अर्थात अपने बनाये समय के घेरे में कैद हो कर युग के गर्त में खो गया तो फिर आज धरा एवं प्रकृति की सुरक्षा के हेतु समर्थ महापुरुष की आवश्यकतावश दैविक कार्य पूर्ति हेतु सूफी संत ने श्री रामचन्द्र जी महाराज श्री लालाजी सा० (फतेहगढ़ यू. पी) को खोज लिया। क्योंकि उन्हें मालूम हो गया था कि दैविक प्रकृति का यह श्रेष्ठ कार्य है तो इसका पूर्ण करने वाला भी पृथ्वी पर अवश्य होगा, क्योंकि सदैव से ऐसा ही होता आया है। अतः श्री लालाजी सा० को सूफी संत ने दैविक–कार्य सौंपकर चैन की साँस ली। दैविक–कार्य के विषय में मैं अपनी अन्य पुस्तकों में भी लिख चुकी हूँ कि "रचना" के सौंदर्य को पुनः दैविक–सौंदर्य प्रदान कर पाने के लिये अब आदि–शक्ति भूमा की शक्ति पर स्वामित्त्व पाई हुई दिव्य–विभूति का अवतरण ही आवश्यक था। यह भी सदैव से ही होता चला आया है कि दैविक नेचर की आवश्यकतानुसार ऋषियों की प्रार्थना के फलस्वरूप रामावतार एवं कृष्णावतार का प्रसाद पाकर धरा सौन्दर्य से सजकर झूम उठी थी। अवतरण के चरण पृथ्वी पर पड़ चुके हैं इसका पता सर्वप्रथम ऋषियों को ही अपने अनुभव द्वारा मिलता आया है। उसी प्रकार इस दिव्य–विभूति के अवतरण का पता समर्थ सद्गुरू, श्रीलालाजी सा० (फतेगढ़ यू.पी.) को ही

सर्वप्रथम वातावरण की दैविक बयार में अनुभव हुआ था। फिर ध्यान द्वारा श्री रामचन्द्र जी महाराज शाहजहाँपुर, यू.पी. का पता जब वे मात्र छः दिन के थे तभी पा लिया था। उनकी देखभाल एवं सुरक्षा समर्थ ने स्वयं को उन दिव्य विभूति के ध्यान में डुबोकर ही आरंभ कर दी थी। दिव्य विभूति के बढ़ते शरीर के साथ ही अनन्त–शक्ति के स्त्रोत के सम्पुट में उन्हे भिगोये रखते हुये श्रेष्ट कार्य हेतु श्री लालाजी सा० को कदाचित् दैविक–प्रकृति ने स्वयं ही गढ़ा था। ऐसे दैविक कार्य का कारण जो Divine प्रकृति ने दिया वही Unique था, तो Divine के unique एवं गुरुतर कार्य को पूर्ण करने वाली दिव्य–शक्ति (आदि–शक्ति) पर स्वामित्व पाये हुये दिव्य–विभूति (बाबूजी) भी तो (Unique) हैं, अलौकिक हैं, अनोखे हैं। इतना ही नहीं Divine कार्य की गुरुता एवं गहनता तो देखे कि "मानव–मात्र के हृदयों में ईश्वर–साक्षाकार ही नहीं बल्कि 'ईश्वर–प्राप्ति' की चाह जाग उठे"। तभी तो श्रीबाबूजी महाराज ने अपने दिव्य श्री रामचन्द्र मिशन में अपने दैविक कार्य में चार चाँद लगाने हेतु हमें अनोखी सहज मार्ग–साधना प्रदान की है। साध्य से मिलन के अतिरिक्त अनुपम–विभूति ने आदि स्थान अथवा मानव को पुनः 'दिव्य–वतन' भूमा के देश की दैविक–साज–सज्जा के सहित वापसी का वरदान दिया है। इतना ही नहीं इन Unique Divine Personality ने सहज मार्ग साधना में वरदान–स्वरूप अपनी प्राणाहुति ईश्वरीय शक्ति का अभ्यासी हृदय में प्रवाह के साथ साधना द्वारा 'साध्य–पक्ष की सामीप्यता लगातार पाते रहने के संगम की अनुभूति का भी दैविक प्राण फूँका है। यह अलौकिक–तथ्य जो मैंने अपने बाबूजी की सामीप्यता मे अनुभवगम्य–हुआ पाया है वह तथ्य अथवा Reality का Realisation है। कुछ भी कह ले कि जैसे पृथ्वी पर भगवान राम एवं कृष्ण के अवतरण से हमें ईश्वर–साक्षात्कार का

वरदान इसलिये शीघ्र सुलभ हो गया कि वह अवतरण ईश्वरीय–देश से धरा पर आया था। इसलिये इनके चरणों का योग पाकर पृथ्वी का योग ईश्वरीय देश से सहज ही हो गया था क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापी है और उनकी दैविक–शक्ति एवं सौंदर्य का योग प्राप्त करके भगवान को याद करने वाले साक्षात्कार पाने हेतु प्रेम में डूबे भक्तों को उनका दैविक–साक्षात्कार पाना सहज एवं सुलभ हो गया था। आज युग–परिवर्तन हेतु प्राणी मात्र के हित अंतिम–सत्य तक पहुँचाने के दैविक–कार्य के संकल्प में भूमा की शक्ति पर स्वामित्त्व या अधिकार पाये होने के कारण, उस दिव्य–देश से अवतरित दिव्य–विभूति के अवतरण से धरा का योग भूमा से स्वतः ही सम्बन्धित हो गया है। सहज–मार्ग साधना में ईश्वर–प्राप्ति के साथ ही हमारे बाबूजी ने अंतिम सत्य तक का लक्ष्य अभ्यासी को प्रदान किया है। मात्र बताया ही नहीं है उसके ध्यान में डूबे उनकी बताई साधना को ठीक तरह से लयलीनता से करने पर ऐसा सत्य हमारे समक्ष उजागर होगा ही। आज मेरे अनुभव ने बाबूजी की पूर्ण research की ओट में हमारे समक्ष इस Divine Reality को भी स्पष्ट कर दिया है। ऐसी अनुपम दिव्य–विभूति की अति–सामीप्यता को पाकर क्रमशः उनके ध्यान में उनमें स्वतः ही लय अवस्था का आरम्भ होने के कारण मानों हमें Ultimate से भी सहज–सामीप्यता का सौभाग्य प्राप्त होने लगता है। धरा पर उतरे उनके दिव्य–चरण चिन्ह जो धरा के आंचल में रेखांकित हो रहे हैं उनको वह अपने हृदय से लगाये युग–परिवर्तन हेतु सँजोये जा रही है। इसका सौभाग्य तो देखिए कि इसके आँचल में रेखांकित चरण–चिन्ह ही आज धरा को भूमा के अनन्त–क्षेत्र से जोड़े हुये है। इतना ही नही समस्त के आत्मिक–उद्धार हेतु उनकी दिव्य–शक्ति का प्रसारण सम्पूर्ण वातावरण को पावन बनाता हुआ युग को ईश्वरीय–युग में बदल देगा क्योंकि ऐसी ही

दैविक–इच्छा है और यह ध्रुव–सत्य भी रहा है। उनका Divine संकल्प कि "प्राणीमात्र के हृदयों में ईश्वर–प्राप्ति की चाह जाग उठे" भूमा की शक्ति के योग स्वरूप इस बात का प्रतीक है कि युग अब सत्–युग अथवा ईश्वरीय–युग कहलाने का दैविक–सौभाग्य अवश्य प्राप्त करेगा। आज उनके द्वारा ही पकड़ाई हुई मेरी लेखिनी का सौभाग्य है कि दिव्य–विभूति मेरे बाबूजी ने अपने "आमीन" अथवा 'ऐसा ही हो' की दैविक–मुहर लगाकर मानों अपनी ही कृपा से दैविक शिक्षण भरी मेरी इस पुस्तक के लेखन को अमर बनाकर युग को दैविक–युग कहलाने हेतु अपने दिव्य–प्यार की धारा में स्नान भी करवा दिया है।

यद्यपि यह गहन–दैविक–रहस्य आज इस लेखन के समक्ष समस्त के हित प्रगट हो गया है कि श्रीबाबूजी महाराज का दिव्य विराट स्वरूप समस्त वातावरण में अन्य अवतारों की भाँति इसलिये छा गया है ताकि लोग आसानी से Divine सानिध्यता की दशा को प्राप्त करके उस सामीप्यता के अनुभव का आनन्द भी प्राप्त कर सकें। आज युग की प्रभुता तो देखें कि जिसने 'श्रीबाबूजी महाराज' जैसी दिव्य–विभूति को पाकर अपने को धन्य बनाया है। भला क्या लिख पायेगी मेरी यह लेखिनी जो अनन्त के हाथों बिक कर अनमोल हो गई है। दिव्य–विभूति का चरण स्पर्श पाकर युग, सृष्टि के सर्वोपरि युग की संज्ञा से तो विभूषित है ही तो साथ में धरा भी भूमा की छवि से अंकित चरण–रज में लीन होकर अपने सौभाग्य में ईश्वरमयी होने की संज्ञा का योग पा गई है। वास्तव में शब्द तो इस दिव्य–विभूति के विषय में अनजान हैं फिर भला क्या और कैसे बोलें। साधना द्वारा उनके दिव्य–दर्शन का सौभाग्य जो उन्होंने मुझे अपने देश में ही ले जाकर दिया है, वहाँ की भाषा तो यही बोलती है कि यह सृष्टि का अनुपम एवं अनन्त का दिव्य करिश्मा ही है। सर्व प्रथम ही

अपने श्रीबाबूजी का लखीमपुर में दर्शन पाकर ही मुझे लगा था मानों ईश्वर से भूला हुआ रिश्ता ही याद आ गया हो और उन्हें छोड़ने का जी ही नहीं होता था। 'अब हमें जाना है' इस वाक्य ने उनके प्रति मेरे जी में अनजानी कशिश (आकर्षण) पैदा कर दी थी। यही Reality थी जो साधना में उज्ज्वल होती गई।

एक दिन अंतर के अनजाने रिश्ते की कशिश, जी में समाये अपने बाबूजी के दर्शन की कुरेदना ने मुझे ही खाना शुरू कर दिया। फिर एक दिन! मानों उनके सर्वव्यापी दैविक आकर्षण ने उनकी याद में मुझे ऐसा लय कर दिया कि मेरा 'मै' अर्थात अपने होने का भाव पिघल कर उनमें ही मिलना शुरू हो गया। या यों कहूँ कि कुछ ऐसा होता है कि उनकी याद की कशिश क्रमशः अहं को जलाकर राख बना देती है। सदा के लिये उनके चरणों की रज बनाकर 'उन्हे' ही सौंप देती है। समस्त के हित यह Divine संदेश दे जाती है कि श्रीबाबूजी महाराज की दिव्य–विभूति मानव मात्र को Divine के साथ 'अन्तिम–सत्य' के आकर्षण को अपने दिव्य–संकल्प में भर कर मानों अपने प्यार और दैविक देख–रेख की परम शक्ति की चादर में समेटकर ले जाने के लिये मौजूद है।

एक दैविक–रहस्य की उज्ज्वलता जो मैं स्पष्ट करने जा रही हूँ वह यह कि जैसा हर अवतार के समय हुआ है और जिसका वर्णन मैं अपनी अन्य पुस्तकों में भी कर चुकी हूँ कि "धरा पर अवतरित रूप के पहले दैविक–प्रकृति की ओर से सँवारा हुआ वह दिव्य–स्वरूप समस्त वातावरण में सर्वव्यापी–स्वरूप में फैल जाता है। तभी तो भक्तिमयी मीरा ने कहा कि 'जित देखूँ तित श्याम मई'। जब भक्त की प्रेममयी व्यथा सीमा तोड़ कर सर्वव्यापी–स्वरूप का चरण–स्पर्श पा जाती है तो भला वह किसकी सुने।

कबीर की वाणी भी इस सर्वव्यापी–स्वरूप का स्पर्श पाकर ही बोल उठी थी कि "हमारा राम है हममें हमन को इंतजारी क्या"। प्रकृति के इस तथ्य की रक्षा भी तो होगी ही कि पृथ्वी पर उतरे रूप के जाने का समय तो आता ही है किन्तु वह सर्वव्यापी–स्वरूप जो समस्त में व्याप्त होता है। वह तो अपने युग का दिव्य–प्रतीक होता है जो समय की सीमा से परे होता है। तभी तो आज तक भगवान राम–कृष्ण के अवतरण को लोग भूल नही पायें हैं। वैसे ही वर्तमान युग की गरिमा जो दिव्य विभूति से जुड़ी हुई है वह क्रमशः अपना रंग लायेगी ही। उनका वह दिव्य–संकल्प ही उनके सर्वव्यापी–स्वरूप के दर्शन हित प्राणीमात्र को तैयार करेगा। दिव्य–विभूति या अवतरण आते नहीं है बल्कि दैविक प्रकृति की पुकार पर दैविक–प्रार्थना द्वारा पृथ्वी पर लाये जाते हैं। श्री बाबूजी का यह सर्वव्यापी स्वरूप, समय की सीमा से परे असीमित शक्ति एवं अनन्त की गरिमा लिये हुये धराको सदैव उनकी प्राणाहुति शक्ति से पखारता हुआ अपनी मौजूदगी के एहसास से परमानन्द में डूबोता रहेगा।

कहना न होगा कि यह विश्व समर्थ सद्‌गुरु लालाजी सा० का सदैव ऋणी रहेगा। जो आदि शक्ति के मुख्य केन्द्र– बिन्दु में अपनी अथक–प्रार्थना का स्पन्दन देकर दिव्य अवतरण को पृथ्वी पर उतार लाये हैं। अपने दैविक–संकल्प की परम–शक्ति से चारों दिशाओं को ईश्वरीय शक्ति के धारा–प्रवाह से परिपूर्ण करके उन्होंने पृथ्वी से लेकर आकाश तक सम्पूर्ण वातावरण को दैविक–सज्जा से सजाया है। ये प्राणियों को दैविक–श्रृंगार से पूर्ण करके युग को सत्–युग अर्थात् ईश्वरीय–युग की संज्ञा से सुसज्जित करने आयें हैं। हमारे बाबूजी ऐसी दिव्य–विभूति कुछ इस तरह से समस्त के हित निवेदित है कि उनके चित्र में हमें उनका दैविक आकर्षण अनुभव में आता है। ऐसा मेरा अनुभव है।

अनन्त–आदि शक्ति से आयी अनन्त छवि अनुपम है एवं उनके प्यार में पलते हुये हम सारे प्राणी, धन्य हैं। उनकी अपार–शक्ति से पलता हुआ यह युग भी अनन्यता की संज्ञा पाकर एक दिन दैविक सुगन्ध से महक उठेगा क्योंकि इसकी धीमी दैविक–तपिश धीरे–धीरे फैलती हुई युग को अपने अंक में समेट लेने के संकल्प से प्रेरित है।

दिव्य–विभूति के प्रागट्य की यथार्थता ने एक और दैविक–रहस्य मेरे समक्ष उज्ज्वल किया है– वह यह है कि भगवान राम एवं कृष्णावतार के समय ऋषि–मुनि गण उनकी लीला में सहयोग देने अपना लोक छोड़कर पृथ्वी पर आये थे। अब श्रीबाबूजी के निकट बैठ कर मैंने पाया कि dictates के माध्यम से अनेक श्रेष्ठ Liberated-souls (मुक्त आत्मायें) जैसे समर्थ सद्गुरू लालाजी सा०, श्रीकृष्ण भगवान, स्वामी विवेकानन्द आदि कई दैविक–महापुरूषों को श्रीबाबूजी महाराज की सेवा हित उनसे सम्पर्क करते है। उस समय तो मैं इन dictates की गरिमा से अनजान थी। किन्तु जबसे लेखन के हेतु श्रीबाबूजी महाराज ने मेरी लेखिनी को अपना दैविक स्पर्श प्रदान किया है तबसे ही मैं अनेक दैविक–गहन रहस्यों की स्पष्टता को पा सकी हूँ। उसमें एक यह दैविक महापुरूषों के dictates की महत्ता भी मैंने समक्ष में उज्ज्वल हुई पाई। कैसा अद्भुत रहस्य है कि Brighter-world में पैरती Liberated-souls को जब पृथ्वी पर दिव्य–अवतरण की महक मिल जाती है तो वे अपने परमानन्दमय–पैराव को भी त्याग कर Divine Personality की सेवा में जागरूक होकर समय–समय पर उन्हें दैविक कार्य–सौंपते हैं एवं उनकी सहज पूर्ति के लिये मेरे श्रीबाबूजी की अत्याधिक प्रशंसा भी उनके dictates द्वारा पाई गई है। इतना ही नही पृथ्वी पर विचरने के कारण हर प्रकार से उनके शरीर की सुरक्षा के

साथ मानों श्री लालाजी सा० को हमेशा मैंने उनके साथ ही अनुभव में पाया है। दैविक–संकल्प अर्थात युग को दिव्य–सौंदर्य प्रदान करने हेतु दिव्य विभूति के हित उनकी सेवायें अप्रत्यक्ष रूप में ही होती हैं क्योकि दैविक कार्य हेतु प्राणीमात्र के अन्दर ईश्वरत्त्व का जागरण देने के हितार्थ उन्होंने मानव–रूप धारण किया है। जैसे भक्त सूरदास जी के एक पद में हैं कि बाल भगवान कृष्ण के रोने पर यशोदा कहती हैं कि इसे नज़र लग गई हैं कैसे नज़र उतरे और यह चुप हो जाये। किन्तु बाल भगवान–कृष्ण को तो धरा पर उनके दर्शन हितार्थ योगी के रूप में उतरे शंकर भगवान को अपने लौकिक–रूप का दर्शन देना था। एक सखी द्वार से आकर यशोदा से बोली दरवाजे पर एक योगी आयें हैं– जटा धारी हैं वे बाल–कृष्ण की नज़र जरूर उतार देंगे। यशोदा रोते बाल कृष्ण को गोद में लेकर द्वार पर गयी। योगीराज शंकर ने डमरू व चिमटा बजाकर उनके दर्शन में डूबकर जो नृत्य किया तो बाल–कृष्ण तुरंत ही चुप हो गये। इतना ही नहीं चाहें यशोदा हो या चाहे देवकी या रानी कौशिल्या हो समय–समय पर भगवान ने उन्हें अपने विराट्–सर्वव्यापी रूप से भी सदा अवगत कराया है। जैसे मिट्टी खाये मुख को खोलने पर यशोदा ने उसमें चारों ब्रह्मांड देखे। अवतरण से पहले देवकी और कौशल्या ने सर्वप्रथम उनका विराट्–रूप ही देखा फिर उनकी प्रार्थना पर ही वे लौकिक–बाल्य–रूप में उनकी गोद मे आये। तब मैं समझ पाई कि लौकिक–कार्य पूर्ति हेतु के प्रकृति की इच्छानुसार उतरे हुये अवतारों में अलौकिक आकर्षण होता है। दैविक–कार्य हेतु दैविक–प्रकृति की इच्छानुसार समर्थ लालाजी सा० ने अपनी तपस्या द्वारा समस्त के हित सत् युग अर्थात युग–परिवर्तन हेतु अनन्त–आदि–शक्ति से रचना की शक्ति पर प्रभुत्त्व पाई दिव्य–विभूति को उतारा है। उनके पास बठैते ही

स्वतः ध्यान में आखें बन्द होने लगती थीं। आज मैं बहुत खुश हूँ कि मानव–मात्र को यह दैविक–संदेश देकर मेरा लेखन धन्य होकर कृतकृत्य हुआ झूम उठा है।

यह ध्रुव–सत्य तो सदैव से ही उज्ज्वल रहा है कि अवतरणों के पदार्पण को उनके दर्शन, कार्यों एवं दैविक आकर्षण द्वारा ही हृदय पहचान पाता है जैसा मैंने अपनी साधना में मूर्ति पूजन के समय अनुभव किया तो पाया था कि चाहे भगवान की फोटो का दर्शन हो अथवा मूर्ति हो, पूजा से कभी जी नहीं भरता था। चित्र का दर्शन मानों हमें अपनी ओर खींच रहा है ऐसे अनुभव से मन बहुत आनन्दित होता था। फिर जब दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी द्वारा बताई सहज–मार्ग–साधना प्रारंभ की तो शायद दूसरी sitting से ही मैंने पाया था कि मानों ध्यान, अंतर्मन में मौजूद ईश्वरीय सामीप्यता के दिव्यानन्द से कभी उबर ही नहीं पाता। इतना ही नहीं श्रीबाबूजी महाराज का चित्र हो या उनका लेखन हो, चित्र देखते ही अनुभव होता था कि मानों हृदय में उनके द्वारा कुछ मिल रहा है और नेत्र चित्र देखने के बजाय बन्द होकर ध्यान में उस आनन्द–रस का पान करने लगते थे। मैं ही नहीं बल्कि मैंने अभ्यासी भाई–बहनों को भी कहते सुना है कि बाबूजी की पुस्तक की दो–चार लाइने पढ़ते ही हृदय उनकी दैविक–कृपा पाने लगता है इसलिये उनकी पुस्तकों का अध्ययन स्वतः ही बन्द हो जाता है। मानों इसने हमें शिक्षा दी कि उसकी हर लाइन उनके दैविक–संकल्प द्वारा, दैविक–शक्ति से चार्ज है। साधना–काल के बहुत अल्प–काल में ही मैंने उन्हें पत्र में लिखा था कि "और तो मैं कुछ नही जानती हूँ किन्तु इतना जान गई हूँ कि आज मेरा मन बस आपके चरणों में समर्पित हुआ यह स्वीकार चुका है कि आप आदि–शक्ति के प्रतीक हैं। 'आपका' दैविक–संकल्प जो दैविक–प्रकृति के इस श्रेष्ठ–कार्य के हित है कि 'मानव–मात्र

ईश्वर को प्राप्त करें यह अचूक है। आपकी Divine-will में समाया हुआ है। दैविक–संकल्प पूर्ण है और मानव मन को पूर्णता से पखारता हुआ दिव्य–लक्ष्य तक पहुँचायेगा। यह भी ध्रुव सत्य है जिसे आज मेरा अनुभव पुकार कर कह रहा है कि हे दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी, आपकी मात्र सामीप्यता के एहसास ने मानों ईश्वरीय रिश्ते की याद देकर मुझे जगाया– सोये हुये मन को उठाया, वृत्तियों को एक नवीन एवं पावन–दिशा प्रदान की है। मैंने यह भी प्रत्यक्ष पाया है कि जब अनुभव बोलता है तो लेखिनी काबू में नहीं रहती है। इसलिये लेखन-पठन के साथ ही Reality के रूप में सब के अंतर में उतरने लगता है। इतना ही नहीं मेरा अनुभव इस बात की बोलती हुई प्रत्यक्षता है कि हृदय में आपकी सामीप्यता का निरंतर आभास मिलते रहने के कारण मुर्झाई हुई मनस्–शक्ति को विश्वास दिया है जिससे वह पुनः खिल उठी है।

आदि से लेकर अंतिम–सत्य तक की यात्रा हेतु अंतर में दैविक–विकास के साथ तदानुसार अपनी दैविक–शक्ति का निरंतर प्रवाह भी दिया है। यह अनुभव दिव्य–विभूति के दैविक–संकल्प एवं उनके दैविक–कार्य की पूर्णता में चार–चाँद लगा गया है। जब भी हमारी चाह आपके दैविक–प्रकृति द्वारा सजाया दैविक–सर्वव्यापी स्वरूप का दर्शन एवं सामीप्यता का सेंक हम सबको युग–पर्यन्त तक मिलता रहेगा। दिव्य–अवतरण का यह ध्रुव–सत्य मानव–मात्र हित सदैव ही प्रत्यक्ष रहा है और रहेगा। कितना लिखू कि यह सत्य भी सहज है उजागर है और सदैव निखरता ही रहेगा कि अपनी दैविक इच्छा–शक्ति द्वारा हृदय में प्राणाहुति–धारा का पावन–प्रवाह से पूरित करने वाले इस दिव्य–अवतरण का चरण–चुम्बन पृथ्वी ने प्रथम बार ही पाया है। वह भी कब? जब दिव्य प्रकृति के नियमानुसार युग ने करवट ली

और अहं मे डूबे हुये संसार एवं भौतिक अंधकार में डूबी हुई पृथ्वी पर मनुष्य को दानवीय–कार्य में इस प्रकार लिप्त हुये देखा जिन्हे इस हालत में से उबरने का होश भी शेष नहीं है। तब! युग की कराह ने इससे उबरने को जब सिर उठाया तभी दिव्य–अवतरण के पृथ्वी पर अवतरण का समय आया। पृथ्वी धन्य हो गई, गगन का शीश गर्व से ऊँचा हो गया, वातावरण परमानन्द से झूम उठा। और युग? ध्यान –मग्न होकर उन पावन–चरणों में निवेदित हो गया। वह यह दिव्य–दृश्य देख पाने का होश भी नही समेट पा रहा है कि कोई अपना वरद्–हस्त उठाये हुये उसे तथास्तु का दैविक वरदान भी दे रहा है। वह होश में आयेगा अवश्य– जब हृदय में दैविक– मुलायमता का स्पर्श– उसे गुदगुदायेगा। वह आपे में या यों कहें कि वह अपने में लौटेगा अवश्य– जब दिव्य–छवि के नूर से जगमगा उठेगा। इतना ही नहीं वह अपनी वापसी या होश को पहचान ही तब पायेगा जब श्वास मानवीय नहीं बल्कि दिव्य–प्राणाहुति का दैविक उच्छवास पायेगा। फिर वह उनकी मौजूदगी को पाकर सोचेगा कि आखिर उसने (युग ने) आँख बन्द ही क्यों की थी। जबकि उसे कहना चाहिए था कि 'दरश बिन दूखन लागे नैन''। किन्तु आज दिव्य–विभूति के दर्शन पा कर युग के नयन बजाय दुखने के हर्ष से भर उठे हैं जो विश्व के लिए साक्षी है कि दिव्य–अवतरण ने धरा को पावन बना दिया है।

●

"अख़लाक"

मैंने सुना है कि समर्थ–सदगुरू लालाजी सा० का कथन है कि "आध्यात्मिकता में पूर्णता पाये हुये मनुष्य में यदि 'अख़लाक' (सदाचार) की कमी है तो मैं उसे पूर्ण आध्यात्मिक पुरूष नहीं मानूँगा" आज अख़लाक क्या है जो हमारे समर्थ दादा जी साहब को मान्य है। दैविक–प्रसाद पाकर ही मेरी लेखिनी ने अपना सिर उठाया है। मैंने पाया कि हम सदाचार को दो भागों में पायेंगे। प्रथम–प्रकार का सदाचार है मानव व्यक्तित्व के निखार से योग पाये हुये बाह्य–व्यवहारों का श्रृंगार है। दूसरा प्रकार – जिसकी ओर समर्थ गुरू का संकेत है वह आध्यात्मिकता से योग पाये हुये हैं। प्रथम को तो अभ्यास द्वारा स्वयं में निखारा जा सकता है वह है व्यक्ति का व्यक्तित्व। दूसरा बड़भागी है जो ईश्वरीय–ध्यान में रंगकर स्वतः ही व्यक्तित्व में सद्‌गुणों का विकास पाता है। मानव–व्यक्तित्व में सदाचार का निखार स्वतः प्रयास से लाया जा सकता है। लेकिन इसमें स्थायित्त्व नहीं होता हैं। क्योंकि इसका आधार हम हैं और हमारे प्रयास के फल द्वारा हमारे व्यक्तित्त्व में निखार आता है। ऐसे बाह्य अख़लाक की प्राप्ति हेतु शब्द–तपस्या ही इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति का द्योतक है। मुझे भली–भाँति स्मरण है कि श्रीबाबूजी से पूछने पर कि 'अहं को कैसे जीता जाये' तो उनका उत्तर था कि अहं को 'तुम' नहीं जीत सकते हो क्योंकि अहं को अहं से नही जीता जा सकता है बल्कि इसका दैविक समर्पण ही एक मात्र उपाय है। हम सभी जानते है कि तपस्या द्वारा तपकर पाये व्यक्तित्त्व से हम कभी भी विचलित हो सकते हैं क्योंकि उसमें हमारा अंह–भाव शामिल रहता है। सदाचार अथवा सद्–विचार द्वारा सँवारे सद् आचरण के पूर्ण व्यक्तित्त्व में स्थायित्त्व नहीं होता और हो भी कैसे? क्योंकि अहं में चंचलता है, इसलिये

कभी भी विचलित होकर स्थायित्त्व को disturb कर सकता है। सच भी है क्योंकि आचार के अभ्यास में विचार का संगम होता है। अर्थात व्यक्तित्त्व के विकास में आचरण का निखार ही सुंदरता है किन्तु यह स्वतः प्रयास की तपस्या का फल है।

उपरोक्त व्यक्तित्त्व में अख़लाक के योग एवं समर्थ–सद्गुरू के अभ्यासी से आशामय अख़लाक में अन्तर है। एक का आधार है तपस्या और दूसरे का आधार है भगवद भक्ति। कहते हैं कि जैसा विचार होता है, वैसा ही आचरण होता है। व्यक्तित्त्व को स्वयं निखारने का अभ्यास है तपस्या जो कठिन है। आध्यात्मिक अख़लाक का अर्थ है विचारों के सतत्–स्मरण में भीगा रहने के कारण इसका लगाव अथवा सम्बन्ध ईश्वर से योग पाये रहने लगता है। वास्तव में आध्यात्मिक–अख़लाक का अर्थ है– साक्षात्कार पाने के लिये विशुद्ध दशा का सौंदर्य यह साधना द्वारा सहज ही हमें सुलभ हो जाता है। साधना में मात्र साक्षात्कार पाने की तड़प के अन्य ध्यान कुछ होता ही नहीं है। ध्यान भी कैसा होता है? सतत् समरण द्वारा लगन की डोर से बँधा है यह (ध्यान) ऊर्ध्व–मुख होता है। लगन से लगी 'सुरत' क्रमशः भक्ति से भीगी रहने लगती है। जिस दिन लगन की भक्ति–रस में डूबी हुई डोर दैविक–प्रेम में पिघल जाती है बस तबसे ही मैंने समझा कि कबीर की सुरत–सुहागिन हो जाती है। इस सुहागिन के सौंदर्य की तुलना में किसी अन्य की गुजर ही नहीं होती है। भक्ति का टीका–आध्यात्मिक–गतियों रूपी मोतियों से सँवारी हुई माँग ही दैविक अख़लाक का सौंदर्य है। अब आगे सुनेंगे तो कदाचित मोहित हो जायेंगे आप भी। तो सुने वह बड़भागी–सुहागिन कौन है? 'विस्मृत–अवस्था में खोया 'मैं' अर्थात अपने होने का भाव। उस दिन मेरी लेखिनी खोई हुई विस्मृत–अवस्था में भी गुनगुना उठी थी– "हो तभी अख़लाक पूरा खाक हो जाये अहं' ध्यान

खोया मान खोया फिर कभी लौटे न हम"। लौटते भी कैसे जबकि ईश्वरमय ध्यान ने हमें स्थित–प्रज्ञ अवस्था में स्थित करके 'लगन' को भी उसमें समाहित कर दिया था। अब आप बतायें कि जब दैविक ध्यान हमें, हम से ही छीन कर ले गया तो फिर इस जामें (शरीर) में सिवाय–खोली के कुछ शेष ही नही बचा। शेष थी तो मानव–शरीर को स्थित रखने वाली 'आत्मा' समर्थ गुरू के संकेत का अख़लाक भी भौतिकता से निःस्पर्श होता है। तभी श्रीबाबूजी महाराज की research की गहनता में मैंने पाया कि ध्यानावस्थित मन द्वारा concentration अथवा एकाग्रता के दैविक–प्रसाद में मन पगने लगता है। अब जबसे दैविक–प्रसाद हममें उतरना शुरू हो जाता है तभी मैंने पाया कि अनुभव साम्य–धारा की सिहरन से पुलक उठने लगता है। एक यह भी बात मैंने उज्ज्वल हुई पाई है कि गतियाँ अथवा दशायें दैविक–साक्षात्कार से सम्बन्धित होने के कारण व्यापकता पाये हुये होती हैं। इसलिये जबसे साम्य–धारा का योग अभ्यासी अपने अनुभव में पाता है तबसे ही क्रमशः हमारा कण–कण साम्य–गति से उज्जवल हो उठता है। फल–स्वरूप हमारा कुल सिस्टम एवं रहनी साम्य–गति अर्थात् balance state मे डूब जाती है। बस अख़लाक इस गति में ही सौंदर्य पाता है मैंने तो बाबूजी को लिखा था कि "मुझे लगता है कि 'साम्य–गति ही मेरा स्वरूप बन गई है। मानों मैं और साम्य–गति एक ही शब्द हैं। अथवा यों कह ले कि 'ध्यान ने हमारे अस्तित्त्व की Reality को प्रकट कर दिया है कि "तू कुछ नही हैं" अर्थात हमें हमारी असलियत का रास्ता अथार्त् Negation की दैविक–दशा की ओर संकेत देकर धन्य कर दिया है। वास्तव में सहज–मार्ग–साधना साँचे–मानव रूप में ढालती हुई साँचे रूप का निखार देकर हमारी पूर्णावस्था में हमें प्रवेश देती है कि 'जैसे हम आये थे'। अब

हम–वैसे ही हो गये है तो फिर जिनके थे 'वे' स्वयं अपना ही लेंगे। अब दैविक–अख़लाख के निखारा हुआ उनका यह पुतला जायेगा भी तो उनके ही पास। मैने पाया कि अख़लाक जान है आध्यात्मिकता की। अख़लाक लचीलापन है भक्ति का। अख़लाक शान है साधना की। अख़लाक ईश्वरीय क्षेत्र के द्वार का खुलापन है अख़लाक गौरव है दैविक ध्यान कां अख़लाक दैविक–श्रृंगार है अंतर्मन का अख़लाक 'संजय' है भगवद–गीता का, अख़लाक तुलसी है रामायण का, अख़लाक सौंदर्य है विशुद्ध–आत्मा का क्योंकि अख़लाक दास है दिव्य–विभूति के चरणों का जिन्हें पाकर अख़लाक जीवन–रहनी में एक दैविक अदा, दैविक–शान की तरह शोभायमान हो जाता है। तब कण कण में व्याप्त साम्य–गति का पुतला हो जाने पर श्रीबाबूजी महाराज का प्यार भरा एवं हौसला देता हुआ समाचार हमें 'संत' अथवा Saint की दैविक–उपाधि का श्रृंगार देकर धन्य बना देता है।

●

"सहज-मार्ग दर्शन (भेद) है ईश्वर का"

सहज-मार्ग ईश्वर का दर्शन एवं भेद है और अनुभव भेद को उज्ज्वल करने वाला होता है।

सहज-मार्ग ईश्वर का दर्शन एवं भेद है और अनुभव भेद को उज्जवल करने वाला होता है। बड़े मज़े की बात है-ध्यान ने सफाई से पूछा, 'तुम कहाँ'? उत्तर मिला 'जहाँ 'वो' वहाँ' ; बात ठीक है क्योंकि ईश्वर का वास शुद्ध-हृदय में ही अनुभव में आता है। अब बारी थी सफाई की उसने पूछा कि 'तुम कहाँ'? उत्तर मिला "जहाँ देखो वहाँ"- बात ठीक ही थी-ध्यान के बिना विकास असंभव है। चाहे भौतिक-संसार हो अथवा आध्यात्मिक-क्षेत्र हो बिना विकास के अंधेरा ही रहता है। जैसे विकास का योग ध्यान से होता है उसी प्रकार ध्यान का योग Sub-conscious-mind से होता है। मानव के अन्दर ईश्वर-प्रदत्त प्रिन्टर के सदृश है Sub-conscious-mind । मामूली सड़क पार करने में ध्यान हमारे साथ होता है। बच्चे से हमेशा यही कहते हैं कि ध्यान से पढ़ो-सब याद हो जायेगा। ध्यान से पढ़ने वाला बालक कुशाग्र बुद्धि होता हैं। जानते हैं क्यों? क्योंकि ध्यान द्वारा अंतस् में दही समर्पित भाव का योग स्वतः ही बुद्धि पाजाती है। फलस्वरूप एकाग्रता का समावेश भी बुद्धि पा जाती है। और तब! मानव, हर क्षेत्र में विकास पाने योग्य हो जाता है। सच पूछो तो अनजाने ही हम ध्यान में पलते हैं। एक बार श्री बाबूजी महाराज से एक अभ्यासी ने पूछा कि 'यदि कर्म से संस्कार बनते हैं तो हम संस्कारों से मुक्ति ही नहीं पा सकते हैं'। उत्तर था नहीं दैनिक जीवन के कार्य तो बिना सोचे ही स्वतः होते रहते हैं- एक के बाद एक अपने आप शुरू हो जाते हैं किन्तु जिन कर्मों की चोट अथवा ठेस अंतर महसूस करता है यह संस्कार बन जाते हैं

क्योंकि वे मानव–प्रिंटर अर्थात Sub-conscious-mind में छप जाते हैं।

मैने साधना द्वारा यह सत्य उजागर पाया है कि सहज–मार्ग दर्शन अर्थात ईश्वर का भेद भी है और इसके गर्भ में दैविक–साक्षात्कार का पसारा भी व्याप्त है। अब ईश्वर का भेद क्या हो सकता है ओर कैसे हमारे समक्ष उज्ज्वल होता है इस भेद को मैने सहज–मार्ग साधना द्वारा उज्ज्वल हुआ पाया है। ईश्वर का भेद है कि 'वह कैसा है कौन है'? और इस दैविक–भेद को साधना द्वारा पाई अनुभूतियाँ ही प्रकाश में लाने में समर्थ हैं। वास्तव में सहज–मार्ग–साधना का मेरू–दण्ड अर्थात आधार है 'ध्यान'। श्री बाबूजी ने साधना में मात्र इतना बताया है कि 'ध्यान रखो कि ईश्वर तुम्हारे हृदय में मौजूद है। दैविक ध्यान के प्रयास में और प्रयास को सतत् स्मरण का योग देने में जो अनुभव अंतर पाता है उसे बुद्धि ग्रहण करके विचारों को सौंप देती है। तब मैने पाया कि मानों अनुभव ही ईश्वर के भेद को उज्ज्वल करने का एक मात्र माध्यम है। ग्रन्थ आज तक कितने ही लिखे गये हैं। किन्तु अनुभव–हीन होने के कारण ग्रन्थ बनकर रह गये हैं, आध्यत्मिक साहित्य को बढ़ाने के लिये। आज मैने इस रहस्य की स्पष्टता भी पा ली है कि 'अभ्यासी का कहनाकि पूजा तो करते हैं लेकिन कुछ अनुभव नहीं होता है'। इसका कारण यही है कि जब तक ध्यान रखने का विचार मस्तिष्क को ही छूता है तब तक अनुभव द्वारा ईश्वरीय–भेद का पता हमे कैसे और कहाँ से मिल सकेगा। अब यह सोच भी हो सकता है कि विचार मस्तिष्क को न छूकर ध्यान का स्पर्श पाकर ईश्वर तक पहुँचे, यह कैसे सम्भव होगा? तो सुनें, श्री बाबूजी ने यह ध्यान रखने को कहा है कि "ईश्वर हमारे अन्दर मौजूद है– ऐसी दैविक–सामीप्यता को ध्यान में रखने की सरसता का अनुभव तब हमें मिलता है जब हम

विचार मै दैविक अपनाइत को feel करते हुये ध्यान में रहें। वास्तव में हमारी अपनाइत ही ध्यान को गहनता देती है और यह गहनता ही दैविक सामीप्यता के उजाले में ध्यान को अनुभव प्रदान करती है। क्रमशः विचार में दैविक अपनाइत अथवा अपनेपन के भाव की गहनता ध्यान को 'उनके' रंग में रगने लगती हैं। बाबूजी ने हमें ध्यान में ईश्वर को रखने का विचार देकर मानों हमारे ध्यान का सीधा सम्बन्ध Divine से रहे ऐसा संकेत दिया है। इसलिये ध्यान द्वारा हमारा Sub-conscious-mind भी Divine सौंदर्य की झलख से रोशन रहने लगता है। फलस्वरूप हमारा अनुभव भी उज्जवल होता जाता है। जैसे–जैसे Divine सौंदर्य की झलक Sub-conscious-mind को स्पर्श करती जाती है तो उसमें मात्र एक का ही अनुभव पुकारता है 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई रे'। इतना ही नही अपने श्री बाबूजी का दिव्य Transmission का प्रवाह पाकर पुलकित हुआ ध्यान मानों अपना ध्यान अर्थात ध्यान रखने का ध्यान भी भूलने लगता है। अथवा यो कहें कि जब मानव दैविक प्रिन्टर में खुद ही प्रवेश पा जाता है तो फिर दूसरा कैसे दिखाई दे। अब जब ये दोनों मिलकर एक हो जाते हैं तब मैने पाया कि गहन निष्ठा की दृढ़ता मानों हमारे अंतर से बाहर आने का द्वार ही बंद कर देती है ताकि हमारी या ध्यान की रहनी, मात्र Divine के साथ ही रहे और दिमाग को वाहय संसार में कार्य का निर्देश देकर मौन हो जाये। जानते हैं क्यों क्योंकि जब ध्यान और दैविक–प्रिन्टर ने ही अपने को Divine बाबूजी पर न्यौछावर कर दिया तो फिर भला बेचारी निष्ठा ही अकेली कहाँ डोलती (घूमती)। तभी मैंने पाया कि तीनों के एकाकार हो जाने पर भक्तिमयी भावना बोल उठती हैं कि देख अब केवल एक ही इच्छा है प्रियतम से कि "नैना अंतरि आव तू, जो तोहि नैन भरैंव ना हो देखों और को ना तुव देखन देऊँ" बात

भी सही है। सहज मार्ग–साधना ने मेरे ध्यान में तेरी याद को ऐसा कुरेद दिया कि मैं उनकी याद में कैद हो गई थी और अब? उलट वासी देखें कि तेरे ध्यान ने, याद से हिलमिलकर प्रिन्टर से संस्कारों सहित आपकी छाप को भी धोकर अपने Divine को ही सहेज कर कैद कर लिया है तो यह तो ठीक ही रहा ना–जस को तस हो गया। कदाचित भक्ति में डूबी इसी हालत में भक्त सूरदास की व्यथा Divine को भी ललकार उठी होगी कि ''हृदय तें जब जाहुगे, मर्द बदों तब तोहि' कहना यही है कि Divine का दर्शन या भेद सहज–मार्ग साधना द्वारा भक्ति के प्रकाश मे उज्ज्वल होकर भाव में भरकर, लेखिनी द्वारा अपने प्यार एवं ललकार, सभी कुछ व्यक्त करने लगता है। वही भेद हमारे लिए अनुभव एवं अनुभूतियाँ के रूप में प्रिय हो जाता हैं। एक भेद मैंने यह भी पाया है कि Sub-conscious mind की भी एक limit अथवा सीमा होती है जिसके पार होने पर विचार और ध्यान सब याद में ही एकाकार होकर भक्ति की गरिमा पाकर पुलक उठते हैं।

अब आगे देखें, कि भक्ति के मोड़ पर भी एक प्यार का दीवाना होश खोये बैठा मिलेगा– जो ईश्वरीय–भेद का प्रथम छोर है, एवं Divine प्रेम की डोर में पिरोया हुआ पुष्प है जिसका अपना परिचय है अवधूत–गति। मैंने पाया कि साधक को अपने प्रियतम के प्रथम अवलोकन की झलक मिल जाती है यही उसके दीवानेपन का कारण है। तभी मैंने पाया कि भक्त अभ्यासी होश खो बैठता है। किन्तु इस दशा में एक बारीकी होती है कि भक्ति भर force में अगर वह कुछ कह भी दे तो अक्सर वैसा ही हो जाता है। अवधूत–गति में डूबकर ही स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी ने नरेन्द्र को स्वामी विवेक+आनन्द अर्थात् विवेकानन्द की उपाधि दी थी। दशा को विवेक के साथ एवं आनन्द की अनुभूति

में भरकर स्वामी जी ने इस दैविक–अवलोकन में होश खोई अपनी गति या दशा को मात्र touching द्वारा ही उनमें उतार दिया था, सत्य यही है कि उस दैविक आनन्द का force कुछ भी कमाल कर सकता है। कदाचित अवधूत में डूब 'चैतन्य–महाप्रभु' के भक्तों का कथन उनके लिए होता था कि 'वे आवेश में आते हैं। वास्तव में दैविक–अवलोकन का दर्शन जो दैविक–तेज रूपी दृष्टि ही प्रदान करती है, उसे पाकर किसे होश रह पायेगा? सहज– मार्ग साधना के दर्शन में मैंने अब यह दशा पाई तब उस स्थिति में परिवार के बीच रहते हुए बाबूजी ने कैसे सम्भाला यह तो, 'वें' ही जानें। यद्यपि उन्होंने लिखा कि 'यदि अभ्यासी को इस हालत में छोड़ दूँ, तो इस परमानन्दमई गति से निकलने का किसी को कभी, होश ही नहीं आयेगा–इसलिए समर्थ गुरु की निगरानी में मैं दो दिन में गति के आनन्द का अनुभव पूरा मिलते ही आगे इस गति की सहज अर्थात natural हालत में ले जाता हूँ–ताकि अनुभव भी मिल पाये और फिर आगे दशा के बदलाव से होश भी चेतन हो जाय– आगे बढ़ने के लिए बस इस परम–गति में डूबी मीरा को 'गिरिधर के दर्शन की रटना ने ही आगे मार्ग–दर्शन दिया था। अब एक भेद मैं और पा रही हूँ कि अवधूत–गति के विलय हो जाने के बाद मानों विराट–हृदय में प्रवेश पाकर दृष्टि के साथ विराट में फैली दशा के लेखन में मात्र यही दशा अनुभव में रहती है कि 'जित देखू तित श्याम–मई' अर्थात् वह सर्वव्यापी है, इस भेद का दर्शन तब श्री बाबूजी ने लिखा था कि 'ईश्वर ने चाहा तो तुम आगे लिखोगी कि 'वह' तुम्हें देख रहा है'। इस कथन एवं भेद में मेरे समक्ष और स्पष्ट हो गया है कि दैविक–दर्शन पाने के लिए दैविक–दृष्टि भी आवश्यक होती है। वह कैसे मिलती है, यह भी सुने– जब Divine या ईश्वरीय–दर्शन का यह भेद सहज–मार्ग साधना द्वारा हमे मिल

जाता है तो साथ ही लगे में समीप में Divine का दूसरा भेद स्वयं ही मुस्कुरा उठता है। लेकिन कब? यह रहस्य भी तो अनूठा है। वह यह कि ईश्वरीय सर्व–व्यापी दशा में प्रवेश ही नही काफी होता हैं क्योंकि मैंने पाया है कि किसी भी दशा में प्रवेश पाकर जो भी अनुभव हमें मिलते जाते हैं वह उसी दैविक–दशा के ही होते हैं। जैसे मानव–मात्र में वह मौजूद है पहले तो दर्शन का यह भेद अपने को हमारे अनुभव में उज्ज्वल करता है। तभी समस्त के प्रति brotherhood के प्यार की छलकन का समावेश भी हृदय अनुभव में पाता है और तभी से हम किसी से नफरत कर ही नहीं सकते हैं। इतना ही नही बुराई देखने वाली दृष्टि भी मानों सर्वव्यापी हालत में समा जाती है। तभी मैंने श्री बाबूजी के कथन की सत्यता को उज्ज्वल हुआ पाया था कि "जब बुराई देखने वाली दृष्टि नहीं रह जाती है तब से बुराई की ग्रहण शीलता भी समाप्त हो जाती है"। तब से दशा अंतर बाहर समस्त में मानों दैविक दिव्य अवतरण के दर्शन का ही अनुभव पाने लगती है। तभी श्री बाबूजी के कथानुसार माया के पाँचो circles अथवा चक्र पार करके दशा आध्यात्मिकता–शब्द की गरिमा को पीकर मानों दैविक–शक्ति की सीमा में प्रवेश पा जाती है। अथवा यों कहें कि सहज–मार्ग साधना दर्शन के दूसरे भेद को दर्शन प्रदान कर देती है। मानों अपने सर्व–शक्तिमान दर्शन से हमें शक्तिमय बनाना शुरू कर देती है। दूसरी बात यह भी है कि मानव के अन्दर पाँच चक्रों में समाई दैविक शक्ति चक्रों के उज्ज्वल हो जाने के कारण हमारी हो जाती है। किन्तु हमें शक्ति का अनुभव नही मिलता है। बल्कि सर्व–शक्तिमान का भेद उज्ज्वल हो जाने पर लय–अवस्था के कारण दैविक–सर्व–शक्तिमान हालत की दैविक अनुभूति का पसारा मिलने लगता है। माया के पाँचों चक्रों अथवा circles के पार की शक्ति का भेद अथवा अनुभव पाने पर

श्रीबाबूजी की मौजूदगी से भीगे एहसास ने बताया कि 'सहस्त्र–दल–कमल का सिमटाव खुलने लगा है। एक विचित्र दैविक अनुभूतिमय ईश्वरीय–भेद था मानों मौन–भक्ति का भीगापन एकाएक हर दशा से चिमटकर, मानों दोस्ती कर चुका था। दोस्ती किसे कहते है– यह कौन सी हालत है इस विषय में बस इतना ही लेखन में उतर रहा है कि अब अव्यक्त गति का नेह–निमंत्रण हिलोरे मार रहा था। हाँ एक बात मेरे अनुभव ने और उज्ज्वल हुई पाई जो अनायास रोम–रोम में समाती चली गई थी, वह अनहद–गति थी– मैनें बाबूजी को इस अनुभव को जब लिख कर भेजा था कि "हर स्पन्दन में चाहे Heart की हो चाहे नब्ज की हो चाहे श्वॉस का स्पन्दन हो ध्यान देने पर 'ऊँ' शब्द ही सुनाई पड़ता है। मानो हर ध्वनि का केन्द्र 'ऊँ' शब्द ही बन गया है। उनका उत्तर था, खुशी है कि तुम्हारे रोम–रोम से अनहद शब्द 'ऊँ' का उच्चारण निकल रहा है। ओंकार दैविक शक्ति का द्योतक है– लगता है सर्वशक्तिमान गति में ईश्वर ने तुम्हे प्रवेश दे दिया है।" तब मुझे संत कबीर जी के अनुभव में पगे पद का स्मरण साफ समझ में आ गया कि 'अनहद बाजत ढोल रे' ढोल शब्द व्यापकता को व्यक्त करता है, अर्थात समस्त में व्याप्त हर स्पन्दन में मानों 'ऊँ' की शक्ति व्याप्त है। सहज मार्ग में मानों ईश्वर सर्वशक्तिमान है इस भेद को भी उज्ज्वल कर दिया है। कहते हैं कि अनुभव में प्राण होते हैं– मुझे आशा है कि मेरी हर गति या श्रेष्ठ दशा के अनुभव का प्राण समस्त हृदयों में ईश्वर–प्राप्ति के लक्ष्य का प्राण फूँक देगा। सहज मार्ग साधना जो ऊपर से उतरी है अथवा यों कहें कि इसका योग साध्य से स्वतः ही है, इसीलिए इसके अपनाते ही हृदय में सोये ध्यान की शक्ति को श्री बाबूजी द्वारा पाई प्राणाहुति शक्ति का प्रथम सिटिंग से ही स्पन्दन मिल जाता है इसलिए जागते ही ध्यान में

स्वतः ईश्वरीय–स्मरण प्रवेश पा जाता है। फिर आगे गति (चाल) कभी रुकती नहीं–तबियत कभी थकती नहीं, लगन की लोनी चैन हर लेती है और आध्यात्मिक क्षेत्र में पड़े पग सदैव गतिमान ही रहते हैं।

अब आगे चलें और देखें कि माया के Circles पार हो जाने के बाद तो हमारी गति (उन्नति) में चार चाँद लग जाते हैं–अथवा यों कहे कि गति स्वतः गतिमान हो जाती है। मैंने पाया कि अब अनुभव मानों खुद ही समक्ष में फैल जाता है कदाचित यह बताने के लिये कि कहीं उसे नीद न आ जाये क्योंकि आगे का मार्ग खुला होते हुए भी कठिन है। कुल गति अथवा स्पन्दन तो सर्वशक्तिमान की महत्ता में समा चुका होता है फिर उसे चेतन कौन रखेगा। किन्तु! तभी मुस्कुराहट भरा मेरे बाबूजी का मुखार–बिन्दु दैविक प्रकाश के मध्य चमक जाता है और मुरझाया–अनुभव मानों चेतना पा जाता है। आगे बहुत टटोलने पर आता है 'ब्रह्म–रन्ध्र' का दर्शन जो ज्योत्सना हीन होते हुये भी मानों गुमान में भरा अपने पार जाने की किसी को आज्ञा देने को तैयार नही था। किन्तु बेचारे को पता नहीं था कि युग को भी परिवर्तन देने वाली दिव्य–विभूति का आगमन धरा पर हो चुका है जो creator की शक्ति का पूर्ण अंश है एवं सहज–मार्ग का दाता है। 'ब्रह्म–रन्ध्र' इतना दुरूह क्यों है, इसका कारण श्री बाबूजी ने इसके पार पहुँचा कर मुझे बताया है कि यह आत्मा का प्रवेश द्वार एवं निकास द्वार दोनों ही है– इसीलिए योगी यहाँ पर आकर ठहर जाते हैं। कहा जाता है कि 'योगी का प्राण ब्रह्म रन्ध्र से ही जाता है– जानते हैं क्यों क्योंकि श्रीबाबूजी का ममत्त्व बोल उठा था कि 'जब घर का द्वार सामने हो तो आत्मा (Soul) का घर जाने का मन स्वतः ही बन जायेगा'। श्रीबाबू जी की दिव्य–हस्ती में ही 'ब्रह्म–रन्ध्र' के दुरुह–द्वारा के पार अभ्यासी को ले जाने की

बेमिसाल–दैविक क्षमता है। मानों समस्त को अंतिम–सत्य तक ले जाने के हित उन्होनें ब्रह्म–रन्ध्र के गुमान को धोकर अपने 'दैविक–संकल्प की श्रेष्ठता के परिचय का मानों झंडा गाड़ दिया है। इस दैविक–शक्ति के झंडे के नीचे साधना द्वारा पाई उन्नति गति के इस केन्द्र अर्थात् 'ब्रह्म–रन्ध्र' को पार कर पाने के लिए अभ्यासियों के लिए उनका Divine संकल्प सैदव सजग–प्रहरी की भाँति तत्पर रहेगा। इस दिशा में उनकी Divine research में पली हुई उनकी यह बिटिया अभ्यासियों की सेवा हेतु प्रिसेप्टर के रूप में उनसे शक्ति का प्रवाह पाते हुये सदैव तत्पर है। अनन्त यात्रा के आदि से लेकर अनन्त तक के सोपानों का स्पर्श देने हेतु उनकी ही कृपा ने उनकी बिटिया को सक्षम बना कर सहज–मार्ग की श्रेष्ठ गरिमा को उज्ज्वलता प्रदान की है। जानते है क्यों? हर स्तर पर, हर सोपान पर हर समय, हर जगह उनकी ही दैविक मौजूदगी का स्पर्श सदैव समस्त के हेतु व्याप्त है। युग के जागरण हेतु, उनकी दैविक–शिक्षा के मंगल–गान की मधुरता ने युग को कुछ ऐसा मोह लिया है कि धरा अपने ऊपर खेलते बाल–गोपालों को स्वतः ही उनकी शरण में समर्पित करने लगी है । कारण है–

सहज–मारग है वो शम्मा जो बाबूजी से रौशन है,
हैं परवाने यहाँ हर दिल, सहज–गति से उजारे हैं।।

कितने और कैसे–कैसे भेद खोले है सहज मार्ग ने। अब शेष ही क्या बचा है जो लेखिनी लिख सके। अंतर की अंत्येष्ठि हो गई, और ब्रह्म–रन्ध्र ने राह दे दी, तुरियावस्था ने Identity का विशुद्ध–चीर पहिना दिया और फिर अनन्त–क्षेत्र के वैभव में प्रियतम् के संकल्प की डोली पर सवार हो गई। संकल्प का योग भूमा, अर्थात् Ultimate से होने के कारण पैराव उसी दिशा में बह चला। अचानक संकल्प का स्पन्दन मिला तो फिर शेष के अवशेष

में आयी चेतना ने पाया तुरियातीत–अवस्था जो भूमा के सप्त–द्वार के प्रहरी की तरह स्थिर थी। जिसका रुख तो सप्त–द्वार की ओर था किन्तु वहाँ गति–विहीन गति में तम मे खोया हुआ प्रकाश था। lifeless life अर्थात् ज्योति–विहीन खाली जीवन था। तुरियातीत–अवस्था मात्र अपने अतीत अर्थात् आदि शक्ति भूमा के आकर्षण का अवशेष था। इसलिए यहाँ भूमा का आकर्षण ही श्रीबाबूजी के दैविक संकल्प के सहारे अभ्यासी को ले जाता है। यह पुस्तक वास्तव में विषय है श्री बाबूजी की पूर्ण research का जो समस्त के हित उनके द्वारा तैयार किये सेवकों के लिये समस्त की आध्यात्मिक सेवा हेतु पूर्ण–शिक्षा के स्वरूप में हमारे समक्ष में हैं।

वास्तव में सहज–मार्ग–साधना–ईश्वरीय–दर्शन में नहाई हुई दिव्य विभूति श्रीबाबूजी के दैविक–संकल्प से सशक्त हुई सहज–साधना है। ईश्वर–सर्व व्यापी है इस तथ्य की स्पष्टता तो हमें दैनिक–जीवन में भी हर समय मिलती रहती है यद्यपि हम इस सच्चाई से अनजान ही रहते हैं। हर मनुष्य रोज़ाना के जीवन में इसका आभास भी पाता रहता है और सहज–मार्ग साधना के ध्यान ने इस तथ्य या दर्शन को उजागर भी कर दिया है। यदि आप ध्यान दें तो हम मात्र दो शब्दों के प्रयोग में ही आपस में निमग्न रहते हैं। 'मैं और तू' हर समय हम इन शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं। एक दिन अचानक मैने पाया कि दैनिक–जीवन की जिंदगी में मात्र 'तू' Divine की ही श्रेष्ठता का पसारा रहता है। रोज़ाना की आपस की बातचीत में अनजाने ही ईश्वर की व्यापकता का ही समावेश रहता है। मैंने तब इस तथ्य को उजागर हुआ पाया कि हमारी जिन्दगी की वास्तविक–जिन्दगी 'वही' है जिसे हम भूल गये हैं। एक दिन मैं किसी से बात कर रही थी, तो उससे मैं, 'तू' के सम्बोधन द्वारा ही बात कर रही थी। किन्तु वही

आदमी जब मुझसे बात करने लगा तो वह मुझे 'तू' का सम्बोधन दे रहा था। जब 'मालिक' ने अपना ऐसा परिचय दिया तो फिर मैं आश्चर्य चकित रह गई। कहने के तात्पर्य का रहस्य यही है कि वास्तव में 'वह' अर्थात ईश्वर ही के स्वामित्त्व एवं सामीप्य में ही हम रह रहे हैं– Dominate वही कर रहा है। वह सर्वव्यापी ऐसा समाया है हमारे जीवन में कि हम मस्तिष्क से, विचार से भले ही उन्हें भूल जायें किन्तु 'वे' या उनका व्यापक–प्यार हमारी रोज़ाना के जीवन में दैनिक–भाषा तक में समाया हुआ है। सर्व–व्यापकता के इस भेद को पाकर मैं अवाक रह गई थी। जिस दिन नाशवान–मानव रूप से हट कर हमारा ध्यान ईश्वर में रम जाता है तभी उनका प्यार, उनकी सर्वव्यापकता का अनुभव उनकी सामीप्यता ही हमें प्रदान करता है। एक दिन सन् 1948 में सहज–मार्ग–साधना मैंने उनके मानव रूप के दर्शन से प्रारम्भ की थी। क्रमशः जैसा मैनें अपनी अन्य पुस्तकों में भी लिखा है कि ध्यान में से कुर्सी पर बैठा हुआ वह प्रिय एवं पावन रूप स्वतः ही ओझल हो गया था। मैंने पाया कि अनुभव–भेदिया है जो वास्तविक–दर्शन की दशा का प्रवेश देकर खुद दर्शन में ही ओझल हो जाता है। फिर क्या था Reality खुद अनुभव के रूप में Divine अर्थात दिव्य–विभूति का भेद खोल देती है। दैविक–भेदिया के रूप में अंतिम–सत्य की ड्योढ़ी या यों कहे कि अंतिम–सत्य के सप्त–द्वार तक साथ देती रहती है। फिर जैसा मैंने लिखा है कि एक–एक करके वे दैविक–सप्त द्वार अपना परिचय देते हुये मानों खुद ही खुद के भेदिया बन जाते हैं। एक गहन–रहस्य मैंने यह भी पाया है कि जबसे Reality खुद अनुभव के रूप में दैविक–भेद को उघार कर हमें प्रदान करने लगती है तबसे लेखनी के लिए यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि अब वह लिखे कि ईश्वर का ही नहीं बल्कि अब सहज–मार्ग भेद हैं

'अंतिम–सत्य' का। इस अंतिम–सत्य के अंतिम–भेद (असलियत) को उज्ज्वल करने के लिए मैने देखा कि खुद दिव्य–विभूति हमारे बाबूजी महाराज का मन्द–मुस्कान युक्त मुखारबिन्दु ही उज्ज्वलता देता है और नत–मस्तक लेखिनी लेखन में मगन हो जाती है। अब आप ही बतायें कि आगे क्या लिखेगी लेखनी जब खुद–अध्याय (Chapter) ही बदल गया है।

अब, जब अध्याय ही बदल गया है तो फिर विषय को भी नवीन–दिशा देना ही पड़ेगी। श्रीबाबूजी द्वारा लिखित Subsconcious-mind दूसरी Super consciousness और तीसरी है Divine-consciousness. आप उनकी अपेक्षा को जो उन्होंने अपनी इस बिटिया से की थी उसकी पूर्ति के लिए इस लेखन की क्षमता भी वे परम–जीवन–सर्वस्व मेरे श्री बाबूजी ही लेखिनी में भर रहे हैं। प्रथम Sub-conscious-mind है– इस विषय का हवाला वैसे तो मैं पुस्तक में दे चुकी हूँ किन्तु फिर भी सुनें– मानव मात्र में यह प्रिन्टर अर्थात छापेखाने के सदृश है। जो भी विचार या ध्यान गहराई से होता है वह प्रिन्टर में छप जाता है और संस्कारों का रूप ले लेता है जिसका भोग हमें भोगना पड़ता है। बाबूजी से पूछने पर कि "मुझे 'राम' का दर्शन होता है"– उन्होंने कहा कि "मुबारक हो तुम्हें लेकिन ईश्वर वह दिन भी जरूर लायेंगे जब तुम्हें वास्तविक–दर्शन होंगे"। ध्यान में डूबे रहने की दशा में मैनें उनके कथन के सत्य को जब स्वयं में उतरा हुआ पाया तब मुझे लगा कि वह तो राम की फोटो का प्रिन्ट था। जब 'राम' की सामीप्यता मिली तो वह छवि किसी फोटो से नहीं मिलती थी वरन् वह सर्वव्यापक दैविक सौदंर्यमय थी तभी मैंने इस पंक्ति को भी अनुभव में पाया था कि "जानत तुमहिं–तुमहिं होय–जाई"। अब आता है दूसरा आध्यत्मिक–श्रेष्ठ स्तर अर्थात् Super-Consciousness इसका पता मैंने तब पाया जब

ईश्वरीय–देश की सामीप्यता में मानों मेरी लय–अवस्था होने लगी थी। उस समय बाबूजी से मेरे पूछने पर कि "कोई जब प्रश्न पूछता है वह मुझसे न टकरा कर कहीं ऊपर चला जाता है और मुख जब उत्तर देता है तो सुनकर मैं अवाक हो जाती हूँ। उत्तर था "खुशी है कि 'Super-Conscious mind' का स्पर्श तुम भली–भाँति पाने लगी हो"। तभी मुझे लगा कि जो लोग कहते हैं कि ईश्वर के mind नही होता तो वह हमारी कैसे सुनेगा? वे कितने भोले हैं। ऐसे विचारों द्वारा वे दूसरे भाइयों में ईश्वर के प्रति अविश्वास पैदा करते हैं। लेकिन Reality तो सिर पर चढ़कर बोलती है। वास्तविकता यह है कि आदमी कर्म से नहीं, कर्म के भोग से डरता है। जैसे बहुत से लोगों को मैंने कहते सुना है कि, ईश्वर कुछ नहीं है हम ईश्वर को नहीं मानते हैं। कैसी हास्यास्पद आपकी कथनी है कि आप ईश्वर की हस्ती को स्वीकार करते हुए, नहीं मानते हैं। कैसे? तो सुनें "आप कहते हैं कि हम 'ईश्वर' को नही मानते हैं अर्थात आप का इशारा है होने की ओर कि 'ईश्वर है लेकिन हम नहीं मानते हैं। "तो आप नही मानते हैं परन्तु हम मानते हैं। एक यह भी बात है कि हम 'उन्हें माने न माने याद करें न करें लेकिन वह हमें मानते हैं याद करते हैं। कहीं भी दुःख, पीड़ा में हमारें मुख से स्वयं निकलता है 'हाय राम'– अब आप ही बतायें कि वह बता रहे हैं कि तू अकेला नही है, राम तुझमें हैं। इतना ही नहीं मुख से 'हाय राम' निकलते ही कुछ न कुछ आराम जरूर मिल जाता है।

हाँ, तो अब बात आती है Divine-Consciousness अर्थात दैविक चेतना की जिसका आगमन आरम्भ होता है जबकि ईश्वरीय शक्ति के केन्द्र में Dip अथवा स्नान देकर बाबूजी Identity को सत्य–पद पर प्रतिष्ठित कर देते हैं। तब से दैविक–वैभव के क्षेत्र अर्थात् सेंन्टर–रीजन से आता दैविक–प्रकाश ही दिव्य–दृष्टि के

रूप में हमारा हो जाता है। दैविक–नेत्र ही हमारे एवं दिव्य दृष्टि ही हमारी दृष्टि होती है। अब आगे अनुभव की गम्य नही रहती है अर्थात् Feeling is the Language of God अर्थात अनुभूति के बजाय अब दैविक चेतना ही हमारे लिये दिव्य–दृष्टि का वरदान हो जाती है। क्योंकि आगे Swimming में अनुभव की गुजर नहीं है। श्रीबाबूजी का दैविक–संकल्प ही अपनी भाषा में जो संकेत भरता है वह उन्हे दिव्य–दृष्टि सहेज कर कैसे भी व्यक्त करता है यह 'बाबूजी' ही जानते हैं। अब उनकी दैविक Research ने कैसे Brighter-World अर्थात Liberated Souls के देश के दिव्यानन्द का स्पर्श देकर ही वहाँ की पहचान दी। कैसे उन्होनें सेन्टर–रीजन के मुख्य–केन्द्र बिन्दु का स्पर्श दिया और भीतर के एक Jerk ने मानों दिव्य चेतना देकर अपना परिचय दिया। तब जो दिव्य–दृष्टि ने दर्शन पाया उसे मैंने चित्रों द्वारा उतार कर समस्त के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है। अब Divine-Conscious के और दिव्य–दृष्टि आदान–प्रदान का जो चित्रित आभास समक्ष में है कदाचित् असंभव होते हुये भी इस गहन दैविक भेद का इशारा मात्र ही देने का प्रयास है। वास्तव में Divine Consciousnes Divine के अंतर में ही व्याप्त है लेकिन आज जब हमारे बाबूजी 'अंतिम–सत्य' तक मानव–मात्र को ले जाने का संकल्प लेकर आये हैं तभी तो उन्हें दैविक–भेद को टटोल कर मानों दैविक चेतना के साथ हम में दिव्य–दृष्टि को भी उतारने की आवश्यकता पड़ी। उस दिव्य–देश का वर्णन कर पाने की क्षमता दैविक चेतना एवं दिव्य दृष्टि की प्राप्ति के बिना असम्भव हैं। सच पूछें तो एक बात मैने अब यह भी उज्ज्वल हुई पाई है कि Divine चेतना में स्पन्दन नहीं हैं। सहज–मार्ग–साधना में हमारे बाबूजी ने आरम्भ से ही ध्यान रखने को कहा है। ईश्वर तक हमारी पहुँच के हर स्तर का स्पर्श हमारे ध्यान को मिलता

है वही Feeling द्वारा हमारे हृदय में उतरता है। उसी प्रकार ऐसे ही दैविक चेतना क्रमशः ध्यान का सहज स्पन्दन पाकर स्वतः ही सजग हो जाती है। डिवाइन के दर्शन को पीते हुए (absorb) करते हुए हमारी दृष्टि अपने अस्तित्त्व को ही खो बैठती है और Divine के रंग में ही रंग जाती है। तो फिर अब दशा तो यह आना ही थी कि "शेष का अवशेष भी चिलमन में जा के छुप गया", तो अब एक मात्र Divine-Consciousness का ही पसारा रह जाता है। कैसा दैविक अजूबा हो जाता है कि संसार को बरतने के लिये तो Mind रहता है और दिव्य देश का दर्शन Divine-Consciousness ही सँवारती है। इस तरह सहज–मार्ग ने ईश्वर साक्षात्कार के बाद मानों अंतिम–सत्य के दैविक–भेद को भी समस्त के प्रति उज्ज्वल करने के लिए दैविक–मार्ग को दिव्य चेतना से प्रशस्त कर दिया है। वास्तव में सहज मार्ग का वास्तविक प्राण हमारे बाबूजी महाराज ही हैं।

●

दिव्य-अनुसंधान (Research)

भला किस लेखनी में क्षमता है कि जो बाबूजी महाराज की दैविक Research अथवा अनुसंधान के उद्देश्य की विशेषता, बारीकियाँ एवं खूबियों के विषय में लेखन हित अपना सिर उठाये। आज मैंने पाया कि इस विषय के लेखन हित श्रीबाबूजी की दैविक–इच्छा का सहारा मिल जाने से, मेरी लेखिनी की गति में अविरल शब्द का जुड़ जाना भी उनका ही दैविक–चमत्कार है। आज मैं इस सत्य को समस्त के प्रति उज्जवल करने जा रही हूँ कि उनके द्वारा अपनी इस बेटी पर उतारी गई research, अनन्त तक की यात्रा की दिव्य–खोज है। उनके दैविक–अनुसंधान की दिव्य–ज्योति से जगमगाते हुए, हर दशा का हवाला देते हुए चित्र भी सामने आते जाने से मेरी लेखिनी उनके पावन–चरणों में नत होकर स्वतः ही लेखन हेतु तैयार हो गई है।

जैसा कि हम देखते आये हैं कि संसार में हर खोज समस्त के लिए एवं हर दिशा में उपयोगी और लाभ के ही लिए होती है। आज सर्वप्रथम मैं यह लिखूँगी कि उनकी यह research उनके दैविक–संकल्प की पूर्ति हित मात्र एक कड़ी है। आध्यात्मिक–क्षेत्र में उनके दैविक अनुसंधान के मध्य अनुभूतिमय–अनन्त–यात्रा में मैंने पाया है कि मानों हर क्षेत्र की दशा की जटिलताओं को जिन्हें हम अभ्यासी साधना द्वारा पार नहीं कर सकते हैं– वे अपनी दैविक–इच्छा–शक्ति की सामीप्यता की तपिश से पिघलाकर बाहर निकाल देते हैं। इतना ही नहीं तभी तो आगे आने वाला मार्ग उनके दैविक–आकर्षण से हमारे समक्ष सरल एवं विशुद्ध हो जाता है। अपनी साधना के विषय में तो मैं सब भूल गई हूँ बस इतना ही याद रह गया है कि जबसे उनका लौकिक–दर्शन पाया था, वह दर्शन मुझमें कुछ इस तरह से समा गया था कि क्रमशः

अनुभव में मैंने पाया था कि मानों अंतर की हर जटिलता दूर होने लगी और मन दैविक–आनन्द से सरस होता गया। वह लौकिक दिव्य–छवि क्रमशः मुझे अपने अलौकिक अर्थात् विराट रूप में प्रवेश देकर फिर सर्वव्यापी रूप में ले गई अर्थात् अपनी खोज द्वारा ह्रद–देश पार कराकर अपनी खोज एवं शक्ति द्वारा Mind-Region अर्थात् हिरण्य–गर्भ का दर्शन करवाया। पश्चात उस यात्रा के बाद सर्वशक्तिमान ईश्वरीय देश अर्थात Godly Region में मुझे प्रवेश दिया था। इतना ही नहीं मैंने देखा कि उनके दैविक–प्रेम ने श्वाँस भी नहीं ली और ईश्वरीय–शक्तिमय बनाकर मुझे अपनी दैविक खोज में उभारे गये पावन सत्य–पद पर प्रतिष्ठित कर दिया (यह भी उन्हीं की खोज है)। उनके प्यार में ओत–प्रोत मेरी दशा सदैव मेरे हाथ से बाहर रही– इस बात की प्रत्यक्षता मैंने यह पाई है कि उनकी दैविक–इच्छा शक्ति आदि से अनन्त यात्रा तक के लिए मानों मुझमें से मुझे ही चुरा ले गई थी किन्तु अपनी (दैविक इच्छा–शक्ति) मौजूदगी को छोड़ गई थी। मानों अपने दैविक– अनुसंधान के साथ समस्त के हित सिखाने का भी उद्देश्य उनकी कृपा के आभास में मुझे मिलता रहा है। मैंने पाया है कि अनन्त–यात्रा के मध्य 64 points की खोज में उन्होंने research की बारीकियाँ को ही प्रगट किया है। इतना भी मैंने पाया है कि वे हर point की दशा का अनुभव, भक्ति एवं वहाँ की शक्ति से सम्पन्न करते हुये मानों अन्य के हित शिक्षा हेतु मुझे तैयार करते गये हैं एवं दैविक–शिक्षण का मार्ग भी उज्जवल करते गये हैं। उनके प्यार में डूबी दिव्यता की खोज का वह अंदाज लिख पाना क्या कभी मेरी लेखिनी को मिल पायेगा? खैर धन्य तो यह उनके वर्णन में डूबकर यह हो ही गई है, नहीं बल्कि यों कहूँ कि इनके वर्णन में डूबकर उनका दर्शन पाकर तो ये मदहोश ही हो गई है। अब उनसे प्रार्थना यही है कि

पाठक–गण इस लेखन को पढ़कर भक्ति में तन्मय हुये उनके साथ बहते हुये अनन्त यात्रा के द्वार में प्रवेश पाये तो यह लेखन भी धन्य हो जायेगा। भाइयों उठें और उनकी research का यह पावन–नज़ारा देखें कि भक्ति की गहराई में खोई हुई तन्मयता एवं अनुभूतियों को भी पीती हुई उनमें पाई लय–अवस्था मानों Divine सागर को ही पी लेती है। तब! मेरे बाबूजी ने लिखा था यह वह अवस्था है कि "हजारों समुद्र मारिफत (ईश्वरीय ज्ञान) को पी जाओ और मुख से यही निकले 'और लाओ–और लाओ।" उन्होंने यह भी लिखा कि आध्यात्मिक सल्तनतें भी इस दशा पर वार दी जायें तो भी कम है"। आगे लिखा कि 'फ़नाइयत सलीका है आध्यात्मिकता का', नूर ही सलीका है अभ्यासी के दैविक सौंदर्य का। उनकी दैविक research द्वारा हमें इस दशा का अनुभव भी मिलता जाता है कि फ़नाइयत अर्थात् लय–अवस्था ही सलीका है आध्यात्मिकता का अर्थात् साधना का प्राण है–और नूर ही सलीका है दैविक–सौंदर्य का। जब यह अनुभव हमारी रहनी बन जाता है तब ईश्वरीय–प्रकाश निकलकर हमारे चारों ओर फैलने लगता है तब से ही साँचे अभ्यासी के रूप में हमारा सौंदर्य उज्जवल हो पाता है।

एक बात और लिख रही हूँ कि श्रीबाबूजी का दैविक–ध्यान जब अभ्यासी को ध्यानमय बना देता है तब मेरे गीत की यह लाइन अनुभव के रूप में स्वतः ही गुनगुना उठती है कि 'वे खुद ही खो गये जो बाबूजी को पा गये' लौकिक अर्थात् बाह्य अहं कुछ इस तरह से ध्यान में विलीन हो जाता है कि अपनी पहचान ही खो बैठता है। मैंने पाया कि शरीर होते हुये भी वह अपना नाम भूल गया था– किन्तु यह कैसा आश्चर्य था कि 'नाम पुकारने पर शरीर सारा काम करता रहता था– आज इस भेद को भी मैं जान गई हूँ कि अधोमुखी–मन जो शरीर की क्रिया को

संचालित रखता है, वास्तविक कर्त्ता वही होता है। वास्तव में अब मैं यह देखकर चकित हूँ कि जब तक हम दैनिक क्रिया को संचालित करने वाले मन को शरीर से जोड़े रखते हैं अर्थात् शरीर को 'मैं' की संज्ञा दे बैठते हैं तो फिर यही मध्यस्थ–कर्त्ता 'मैं' हमें कर्म के बंधन में बाँधने लगता है। जब ध्यान हमें हमारी सही दैविक स्थिति के स्थान में पहुँचा देता है, तबसे हम कर्म–बंधन से परे होकर मानों **Self Realization** की अनुभूति में पलने लगते हैं। सहज–मार्ग साधना में हमारे बाबूजी ने हृदय में दैविक–ध्यान के अनुसंधान द्वारा **Self Realization** की पावन स्थिति प्रदान की और उन्होंने ही इस आत्मिक–गति की अनुभूति के आनन्द के विषय में लिख पाने का हौंसला दिया।

ध्यान के दूसरे स्तर पर जब मैंने पाया कि 'कोई कितना भी अपमान करे, कितना भी अपशब्द मेरे लिये बोले–परन्तु मुझ पर कुछ असर ही नहीं होता है। लगता है कि उनकी बातें मुझ तक पहुँच ही नहीं पाती हैं। किन्तु बाबूजी के पत्र में हो अथवा कोई मेरी प्रशंसा करे तो अंतर की गहराई में इसका स्पर्श शायद मुझे छूता है क्योंकि अंतर को कहीं न कहीं सुनने में कुछ अच्छा लगता है। श्रीबाबूजी ने मुझे लिखा था कि 'उत्तर तो बिटिया, तुमने स्वयं ही दे दिया है कि इसका अर्थ है कि कस्तूरी कहीं जिन्दा है। तुम्हें एक बात लिखता हूँ कि स्थूल अहं जो बाह्य से सम्बन्धित है उसे जीतना तो आसान होता है– लेकिन आंतरिक–सूक्ष्म–अहं मात्र दैविक ध्यान में डूबकर पिघलकर ही दूर होता है। यह आत्मा से सम्बन्धित होता है इसलिये इसे जीत पाना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव है। इस श्रेष्ठ–अवस्था को कोई बिरला भक्ति में दीवाना ही प्राप्त करता है जबकि शिक्षक ही ऐसी श्रेष्ठ–स्तर की बरकत प्रदान कर सकने वाला होता है। लेकिन अपने श्रीबाबूजी महाराज की **research** द्वारा इस अवस्था को प्राप्त करना मैंने इसलिये

सरल पाया है कि श्रीबाबूजी के कथनानुसार आत्म–निवेदन अथवा Submission सहज–मार्ग–साधना की जान है। इसका एक भेद मैंने अपने साधना काल की दशा में जो मेरे समक्ष है यह पाया कि 'मैं आपकी हूँ'। हर कार्य करते समय यह स्मरण इस भाव में ही डुबोये रखने का प्रयास करती थी। कोई चीज़ अच्छी लगी, कोई फूल, फल अच्छा लगा तो मेरा स्मरण सदा अपने को बाबूजी से जोड़ने का प्रयास करता था कि उन्हें ही अच्छा लग रहा है। जब यह अभ्यास वास्तविक हालत में बदल गया अर्थात् स्वतः ऐसी दशा रहने ही लगी तो चीजों के लिए 'अच्छा' शब्द की संज्ञा ही समाप्त हो गई थी। लगता था मैं नहीं बल्कि मेरे अंतर से मात्र उनके ही प्यारे नेत्र देखते थे। अब बतायें कि जो नहीं देखा, नहीं सुना वह मेरे मन तक कैसे पहुँचा यह इस दशा की लय–अवस्था की सत्यता में मैंने पाया था कि 'आत्मा को परमात्मा में विलय हो पाने की पावन घड़ी मेरे बाबूजी ही ले आये थे– सूक्ष्म अहं की संज्ञा को भी दैविक–ध्यान में लय कर देने के लिए। श्री बाबूजी से मेरा अंतर दशा लिखते समय और अंतर प्रेममय हो जाने पर मानों प्रार्थी होकर बस यही माँगता रहा है कि 'आप समस्त अभ्यासियों के हित यह समय शीघ्र लायें ताकि लौकिक–दुःख में डूबे लोग परमानन्द में झूम उठें'। मानों श्रीबाबूजी के सहज–मार्ग में दैविक–प्रसाद रूप उनके ध्यान ने अपने को उनके चरणों में समर्पित कर, सफाई एवं प्रार्थना को जो ध्यान रखने हेतु साधना काल के प्रारम्भ में सहायक होती थीं, उन्हें भी उनके चरणों में अर्पण कर दिया और स्वयं उस दिव्य–छवि की छटा में खुद ही रंगने लगा। इस प्रकार हमारे ध्यान का योग मानों उनकी दैविक research के प्रथम–पड़ाव या chapter को पूर्ण कर लेता है फिर उनकी research द्वारा Heart-Region की शक्ति दे मुख्य केन्द्र बिन्दु में drowned हो जाता है। तब उनकी ही Divine-Will द्वारा

Heart-Region के मुख्य केन्द्र की परम–शक्ति जब हम अभ्यासी की उन्नति में योग पा जाती है तब उस शक्ति से भरी मनरस्–शक्ति खिल उठती है अथवा यूँ कहें कि जागृत होकर होश में आ जाती है। तबसे मैंने पाया कि हमारी साधना को दुगुना बल मिल जाता है। एक दैविक अजूबा यह भी होता है कि तबसे ध्यान, विराट् दैविक–हृदय का स्पर्श पाकर मानों विराट गति के साथ ही हो लेता है। वह हमें ऐसा भूल जाता है जैसा कभी देखा ही नहीं था। याद भी कैसे रख पाये बेचारा जबकि समक्ष में फैला प्रिय का ईश्वरीय–विराट श्री बाबूजी के दैविक–अनुसंधान द्वारा लिखे Mind-Region में योग पाकर बची हुई क्षमता को भी खो देता है। तबसे उस देश की श्रेष्ठता श्री बाबूजी महाराज द्वारा मुझमें उतारी गई वहाँ की अवस्था में डूबी हुई साधना मानों मेरी अनुभूति में अपनी चेतना भरने लगी। ऐसा लगता था मानों रचना मेरी शक्ति का ही पसारा है, मानों सारी शक्ति मेरे हाथ में है। श्रीबाबूजी ने लिखा था कि अब तुम्हारी अनुभूति ही मेरे research की गवाह बन गई है। Mind-Region या हिरण्य–गर्भ का देश सृष्टि–रचना की शक्ति का क्रियान्वित–केन्द्र है। इसी कारण तुम्हें इस Region में प्रवेश देने में कठिनाई हुई क्योंकि रचना की शक्ति का क्रियान्वित–रुख़ नीचे की ओर है और मुझे तुम्हें नीचे से उठाकर उस शक्ति के रुख़ के against उस श्रेष्ठ Region में ही प्रवेश देना था। इसीलिये समर्थ की कृपा से मैंने अपनी दैविक इच्छा में तुम्हें लेकर इस श्रेष्ठ Region में प्रवेश देकर ठहराव भी दे दिया ताकि तुम्हारी यात्रा भी यहाँ शुरू हो सके। इसका एक उद्देश्य मैंने यह भी पाया है कि मानों अब दूसरों की उन्नति की शिक्षा हेतु ही उन्होंने उस महत्–केन्द्र का पसारा मेरे समक्ष रखा है। कैसी दैविक–सटीक Research है उनकी, एवं कैसा आश्चर्य है कि मुझे अनुभूति के साथ शक्ति का अंदाज़ भी दिया है उन्होंने।

कदाचित् इसलिये कि उनकी इस शिक्षा का लाभ समस्त को सुलभ हो सके। मैंने पाया है कि समय की गति को समान करने हेतु, Mind की उच्छृङ्खलता को सही दिशा देने के लिए आत्मिक–क्षेत्र में हर तथ्य के अर्थ को अनुभव में पिरोते हुये ईश्वरीय–देश (Godly-region) की गरिमा को भी उस शक्ति में पिरोकर प्रकट कर दिया था। मानव को ईश्वर को ही समर्पित कर देने वाली यह एक ही हस्ती उतरी है। क्योंकि समस्त के हेतु इसको सुलभ करने का प्यार ही तो उनके विराट्–हृदय में फैला है इतना ही नहीं आगे मानव को सत्य–पद की गरिमा से विभूषित करके प्रथम तो अपने दैविक–गौरव के देश अथवा भूमा या Ultimate के वैभव–देश (Centre Region) की गरिमा में पैराव देते हैं। आदि शक्ति पर पूर्ण स्वामित्व पाये हुये वे आज हमें अनन्त यात्रा की अनुभूतियों सहित मानों शक्तिमई अपनी दिव्य Research का भी पूर्ण दिव्य–दर्शन करवा देते हैं। इसका कारण भी यह है कि यहाँ अंतिम–सत्य के दर्शन का दैविक–आकर्षण ही प्रेरक बनकर अभ्यासी हृदयों में उनके दैविक–कार्य की पूर्ति का कारक बनेगा। इस ध्रुव–सत्य को आज इस लेखन द्वारा उनकी दैविक–कृपा ने ही उज्जवल कर दिया है। वातावरण को अपनी दैविक–शक्ति की क्षमता द्वारा दैविक–इच्छा पूर्ति हेतु गति प्रदान की है। आज मुझे इस विषय में उस दैविक–कसीदे की यह लाइन पूर्ण रूप से उजागर हुई मिल रही है कि "चश्मे–हक़–बी देख ले बिस्मिल, निगाहे–शौक से, फूलता–फलता है कैसा बोसताने–मारिफ़त" अर्थात् 'हे सत्य को देखने वाली निगाह अब शौक से देख ले कि ईश्वरीय–ज्ञान का यह दैविक बगीचा कैसा फूले और फलेगा'। श्रीबाबूजी महाराज ने इसकी सत्यता की पूर्णता के लिए सहज–मार्ग–साधना के तरीके द्वारा दैविक अनुभूतियों रूपी पुष्पों को अपनी दिव्य Research के धागे में पिरो दिया है।

इतना ही नहीं, समर्थ सद्गुरु की याद में भिगोकर आज इस अनन्त–यात्रा रूपी माला को दिव्यता का आशीर्वाद दिलाने हेतु अन्तिम–सत्य (भूमा) को ही समर्पित कर दिया है। भला इस पुस्तक का दैविक–सौभाग्य तो देखिये कि आशीर्वाद ग्रहण करने के लिये सीधे बेहिचक भूमा के देश में जाकर उनके ही चरणों को चूमकर पड़ गई है दिव्य–आशीष में सराबोर होने के लिए।

आध्यात्मिक–क्षेत्र में अपनी दैविक research द्वारा अनन्त–यात्रा की दिशा में खोजे गये हर पड़ाव का दर्शन एवं दशा जो उन्होंने मुझ पर उतारी थी उसको आज मेरे बाबूजी मेरे आगे फैलाते जा रहे हैं– कदाचित इसलिये कि वहाँ की हर अनुभूति लेखिनी का स्पर्श पाकर आज बोल उठे। हर शक्ति का समावेश अपने में पाकर मैंने पाया कि मानों यह कह रही है कि वह समस्त के कल्याण हेतु बाबूजी के दैविक–संकल्प का ही अंग हैं। मेरे लिये उनका दैविक शिक्षा की ओर इशारा है जिसे मैं जी–जान से पूर्ण करूँगी। क्योंकि संकल्प एवं अनन्त–यात्रा की शिक्षा द्वारा ही उनकी इस दैविक–अपेक्षा की पूर्ति हेतु मैंने उनकी दैविक–इच्छा–शक्ति का सम्बल पाया है। अब देखें– तीसरा पड़ाव है जो ईश्वरीय–क्षेत्र या Godly Region में प्रवेश पाने पर आता है। इस पड़ाव की गरिमा तो देखिये कि यह क्षेत्र अपने में प्रवेश का स्थान ही तब देता है जबकि इन्सान यह भूल चुका होता है कि वह कौन है। यह ईश्वरीय देश की अवस्था, आती ही तब है जब हम कुल ईश्वरीय रंग में लय हो जाते हैं। इतना ही नहीं मैंने अनुभूति में पाया था कि यदि मुझसे कोई कहता था कि कस्तूरी इधर आओ तो मेरे कान मानों यही सुनते थे कि 'हे ईश्वर इधर आओ'। यह अनोखी एवं अनूठी श्रेष्ठ–गति आज दिव्य–विभूति के चरण पृथ्वी पर पड़ने के प्रभाव से ही हमारे लिये सुलभ हो सकी है। आध्यात्मिक क्षेत्र का यह भेद भी आज तक चुप ही रहा

है क्योंकि दिव्य क्षेत्र तक एक–एक सीढ़ी पर लाते हुये वहां की अनुभूति में पगने का परम–सौभाग्य देते हुए सहज–मार्ग की शिक्षा बाबूजी द्वारा पृथ्वी पर प्रथम बार ही आई है। उनकी शिक्षा का गौरव और Godly Region की रहस्यमयी हालत का खुलासा उनकी ही शिक्षा ने अनुभूतियों के रूप में मुझे दैविक–प्रसाद के रूप में प्रदान किया है। आज मेरी लेखिनी इस दैविक–क्षेत्र का अनुभूतिमय विवरण देने में समर्थ हो सकी है। ईश्वरीय क्षेत्र में ईश्वरीय रंग में रंगी, सर्वव्यापी एवं सर्व–शक्तिमान अवस्था में एकाकार हुई मैं भौंचक खड़ी रह गई। पता ही न चला कि वह दिव्य–साक्षात्कार या दर्शन मुझे क्या दे रहा था– क्योंकि वहाँ तो अन्य कुछ था ही नहीं फिर क्या कहूं कि वह दर्शन मेरा था या जीवन–सर्वस्व ईश्वर का था। समक्ष में मेरे बाबूजी थे। एक दैविक–भेद मैंने श्रीबाबूजी की दैविक–शिक्षा अथवा research में यह भी पाया है कि 'लय–अवस्था' की पूर्णता प्राप्त करते हुये भी यहाँ क्षणिक ही सही मैंने उनकी ज़ात अथवा उस सत्य के मुख्य केन्द्र का दर्शन पृथक पाया। किन्तु यह क्या वही क्षण तो था जब एकाएक एक दैविक–दृश्य जिसकी गहनता की कोर से मेरे बाबूजी ने ही उस दृश्य के दर्शन का सौभाग्य ईश्वरीय–दिव्य–ज्योति द्वारा मुझे प्रदान किया था। आज लेखन के समय मानो वह दिव्य–दृश्य पुनः समक्ष में फैलकर मेरी सुधि–बुधि का हरण कर रहा था। मैंने देखा कि मानों पलक–मारते ही बाबूजी ने मुझे अपने दैविक–अंक में लेकर मुख्य ईश्वरीय शक्ति के केन्द्र में गोता देकर निकाल लिया। मानों नव–शिशु को ईश्वरीय–शक्ति से नहलाकर पूर्ण उस–मय ही बना दिया था। तब मैंने पाया कि Ego के सोलह सर्किल्स ईश्वरीय–शक्ति में समा गये थे। सुना है कि ईश्वर में Ego नहीं है इसलिये वह अकेला है; एक है तो उसकी शक्ति भला दो को कैसे सहन करती। अब शेष बची थी

तो मानों ईश्वरीय तेज से चमचमाती हुई Identity जो श्रीबाबूजी का दैविक स्पर्श पाकर धन्य हो गई थी। दिव्य–अनुपम प्यारमय मेरे बाबूजी की कृपा का अनुपम दर्शन जो उन्होंने अपनी research द्वारा ही मुझे यहाँ दिया है उसे लिखने के लिए शब्द कहाँ से लाऊँ– हाँ उनकी दैविक–शिक्षा एवं अपेक्षा ने ही मानो इस Reality को लिख पाने की क्षमता प्रदान की है। तो सुनें कि जहाँ केवल और केवल एक है उसकी प्राप्ति का प्रसाद उन्होंने मुझे दिया, फिर मैंने पाया कि दैविक–संकल्प में भी प्रवेश दिया। फिर उन्होंने भूमा से आई पैराव देने हेतु प्रहरी के रूप में सत्य पद पर प्रतिष्ठित किया। दिव्य विभूति से किंचित मात्र ही सही मुझे पृथकता का अनुभव दिया। वह भी इस रूप में कि मुझे अपने वैभव के देश सेंटर रीजन में सत्य पद पर प्रतिष्ठित करके उनकी प्रतीक्षा की दशा में बैठे, अनुभव ने सब कुछ भुला दिया था। मैंने यह पाया है कि यह मुख्य–पड़ाव अनन्य अनुभूतियों से सजी उन्नति पर ले जाती सीढ़ियों के पड़ाव हैं क्योंकि हमारी गति में, उनकी शिक्षा द्वारा पड़ाव जैसी चीज़ में कभी रूकावट आई ही नहीं। अब देखें कि सत्य पद का भी पड़ाव कहाँ था जबकि प्रतीक्षा में लय दशा ही थी।

अचानक! मेरे बाबूजी आगे फैले इस दिव्य–वैभव के देश में मेरे प्रवेश का मानों दैविक–संदेशा लेकर आये। मेरे होश ने मुझे जगाया तो समक्ष में दैविक–मुस्कान भरा देदीप्यमान मेरे बाबूजी का मुखारबिन्दु था। तभी अचानक मैंने पाया कि मेरे शेष अथवा Identity को अपने दैविक–संकल्प की नाव में लेकर, पैराव (swimming) शुरू कर दिया था। आज इस दैविक–रहस्य की उज्जवलता भी मेरे समझ में आ गई है कि Identity जो अकेली है वह बिना किसी के सहारे गति नही पा सकती है– इतनी सूक्ष्म कि जिसमें अन्य की गुजर ही नहीं है, न चाह की न संकल्प की

ही। कदाचित् यही कारण है कि इस दिव्य–दशा तक कोई पहुंचा ही नहीं क्योंकि कोई अन्तिम–सत्य तक की अनन्त–यात्रा की पूर्ति देने हेतु दैविक–संकल्प लेकर अवतरित ही नहीं हुआ। कैसा अनोखा–दैविक–समन्वय का दर्शन है यह कि 'संकल्प की नाव में Identity, का पैराव है'। हे मेरे बाबूजी यह दिव्य–दर्शन, यह दिव्य–गति आप समस्त के लिये लेकर उतरे हैं तो कृपया सब पर जल्दी कृपा करें। एक Reality का साक्षात्कार मैं यहां और पा रही हूँ कि "आगे पैराव में ध्यान भी हमें छोड़कर उनमें लय हो जाता है तबसे उनका दैविक--ध्यान जो हमारे लिये है मानव–मात्र के लिये है, उसका रूख़ हमारी ओर हो जाता है बस तबसे हमारी गति निर्द्वन्द्व होकर मानों उनके द्वारा प्रदान की हुई दैविक–स्वतंत्रता अर्थात् जीवन मुक्त दशा में विलीन हो जाती है।

इतना ही नहीं उनकी दैविक Research की search में मैंने पाया कि इस दैविक–वैभव के अपार–क्षेत्र की राह में प्रथम एवं कठिन स्थान आता है जिसे उन्होंने Brighter World का अथवा दिव्य–स्थान का नाम दिया है। वह Liberated Souls के आनन्दमय–पैराव का अनुपम क्षेत्र है। यहां दिव्य विभूति अपने बाबूजी महाराज का दैविक–आचरण मुझे और भी दीवाना बना गया है। जानते हैं क्यों? क्योंकि जिस दैविक research की शिक्षा समक्ष में वे मुझे दे रहे हैं उसके द्वारा ही मैं जान पायी हूं कि यहाँ कैसे नियम व कैसी शिक्षा का प्रसारण मेरे बाबूजी ने दिखाया है जो आने वाली पीढ़ियों को सदैव रहनी में श्रेष्ठता की शिक्षा प्रदान करता रहेगा। आज लेखन हेतु जब वह अनूठा--दृश्य मेरे समक्ष में है तो उनकी दैविक–शिक्षा का दर्शन भी मैं पा रही हूँ। यहां के दैविक–आचरण पर तो मैं न्यौछावर ही हो गई हूँ तो सुने यह Brighter-World अर्थात् Liberated Souls के दिव्य परमानन्द की रहनी का स्थान है उसके पार वे हमें कैसे ले चलते

हैं इसका दिव्य–दर्शन जो शिक्षा हेतु उन्होंने दिया है उसे सुनें– मैंने देखा कि यहां एक अनदेखी अनबूझी boundary को कुछ इस प्रकार से मात्र स्पर्श देते हुये ले जाते हैं कि उसमें प्रवेश की दशा की महक भी मिलती रहे और उनके संकल्प की शक्ति का साया, हमें अपने में समेटे रहे– जानते हैं ऐसा उन्होंने क्यों किया? ताकि यात्रा के साथ उस शक्ति का स्पर्श भी हमें मिलता रहे जिससे उस शक्ति एवं दर्शन के द्वारा अन्य अभ्यासियों को उनकी Research की यह सजीव–शिक्षा का लाभ सदैव मिलता रहेगा। इतना ही नहीं उनकी शिक्षा का यह दैविक आश्चर्य मैंने पाया है कि हमारी Swimming भी अविरल–गति से लगातार चलती ही रहती है।

उनकी दिव्य research में अनेक दिव्य बिन्दुओं का भी विशेष महत्व मैंने पाया है। एक बार मेरे गीत की एक पंक्ति नें उनकी research के फलस्वरूप 16 circles की व्याख्या में इस सच्चाई को स्पष्ट किया है कि बाँधा circle में अहम् 'मिल्कियत' (Mastery) वो क्या कहिये, अर्थात् क्या ऐसे दिव्य–कथन को किसी ने कभी सुन पाया है कि किसी ने मानव अहम् को 16 Circle में कैद कर लिया है? जानते हैं क्यों? क्योंकि अपने दिव्य–संकल्प की गरिमा को पूर्ण करने के लिए उनकी यह अद्भुत–क्षमता का दर्शन है हमारे लिये। भूमा की शक्ति पर स्वामित्व पाई हुई दिव्य–विभूति का यह दैविक चमत्कार है। कैसा सुन्दर एवं श्रेष्ठ है सहज मार्ग का दैविक पथ। उनकी दैविक Research ने अभ्यासियों को अन्तिम–सत्य तक ले जाने के लिए चौंसठ points रूपी सीढ़ियों का सोपान बनाया है। अपनी Divine इच्छा का आधार देकर उनके बालक अभ्यासी थक न जायें कदाचित् इसीलिये, अपने दैविक संकल्प रूपी पकड़ के साथ आदि से लेकर अनन्त तक दैविक आकर्षण का भी सहारा दिया

है। इतना ही नहीं मैंने इस सत्य की भी अनुभूतिमय प्रत्यक्षता अपने इस गीत की पंक्ति में लिख दी है कि "उनके देश (भूमा) में वे स्वयं ही हमें बुलाने के लिये खड़े हैं"। यह कैसा दैविक–दृश्य हमारे समक्ष में है इसे मेरे गीत की गाती हुई, झूमती हुई पंक्तियों में सुनें– "देखा जो उनको पलक भीग गये थे ऐसे दुलार बाबू का बांहें पसारे था जैसे", इतना ही नहीं आगे सुनें– " 'संध्या' हर धुन में 'तू है मेरा' ये सुना हमने"। ईश्वर को पाने वाले भक्त तो होते आये हैं किन्तु क्या किसी ने खुद Divine को 'तू है मेरा' कहकर हमसे मिलने को अधीर देखा है? क्यों न हो जब उन्हें हमारी याद आई है तभी तो पृथ्वी का हृदय भी आज उन दिव्य–चरणारबिन्दुओं की रज से पावन हो उठा है। सहज–मार्ग–साधना ने मानों हमें वह दिशा दी है कि देख तेरी प्रतीक्षा में रत खुद Divine तेरे ध्यान में डूबा हुआ है। तभी तो मैंने पाया है कि हम अभ्यासियों को उन्हें ध्यान में रखने का अभ्यास परमानन्दमय है। "वह हमारे अन्दर मौजूद हैं और हमारे हैं इसे ध्यान में रखने से मैंने पाया कि ज्यों–ज्यों ध्यान गहन होता जाता है, अभ्यास द्वारा अनुभव में इसकी Reality का स्पर्श हम पाने लगते हैं। अपनाइत के प्रभाव ने उनसे मिलन की चाह अथवा भक्ति को और भी बढ़ाया था। बढ़ती हुई भक्ति ने दैविक–सामीप्यता का अंतर में सेंक पाया तो फलस्वरूप माया के बंधन पिघलते गये और भक्ति का संचार रोम–रोम में फैल गया। तब मिलन की चाह में मेरा रोम–रोम दर्शन के लिए अधीर होने लगा। मानों शरीर यहाँ रहते हुये भी मैं उनके साथ उनके देश में ही रहने लगी थी। किन्तु सालोक्यता की इस दशा ने मानों उनके ध्यान रखने के ध्यान को भी पिघलाकर लय कर दिया। पश्चात् दैविक–अनुभूति ने पाया कि उनके लोक की रहनी में 'उनकी' ही मौजूदगी में लय होने लगी, क्यों? वह 'एक हैं अनुपम

हैं' फिर ध्यान को वास्तविकता का स्पर्श पाकर मैं अपने ध्यान की व्याख्या में उनको ही पाने लगी। फलस्वरूप सारे भौतिक बंधनों से मुक्त होकर शरीर के ध्यान से परे होकर मानों मैं उनका ही स्वरूप हो गई थी। दृष्टि में भी वे, स्पर्श में भी वे एवं रूप भी मात्र Divine ही हो गया था। उनके द्वारा पाये इस अलौकिक दैविक आनन्द–रस को पान कर मानों मैं 'वह' हो गई थी। अर्थात् सारूप्यता की गति (दशा) में लय हो गई थी। किन्तु तब? जो 'उनकी' कृपा ने मस्तक उठाया तो कदाचित् ध्यान में भी मुझे न पाकर सहज ही मुझे अपना लिया– मानों सायुज्यता की गति प्रदान करके मेरे अस्तित्व को ईश्वरमय बनाकर मानों दैविक–साक्षात्कार के लिये तैयार कर दिया। इस लेखन को उनके ही कर–कमलों ने स्पष्टता प्रदान की है। और मुझे? मानों अपनी दैविक Research द्वारा हर अनुभूति के लेखन हेतु उन्होंने जो 'अपेक्षा' मुझसे की थी, आज वही दिव्य वरदान बनकर मेरे लेखन में समा गयी है। तभी तो मैंने पाया है कि गूंगी–अनुभूतियों को भी लेखन हित बोलने की क्षमता उन्होंने ही प्रदान की है। इतना ही नहीं 'मूक होंहिं बाचाल' की सार्थकता को उन्होंने ही मेरी लेखिनी में भरा है। और भी सुनें– अपनी रंक–बिटिया के सिर लेखन का छत्र रखकर मानों उन्होंने ईश्वरीय–गरिमा से भरे इस लेखन को भी सार्थक कर दिया है कि "बहिरो सुनें, गूंग पुनि बोलें, रंक चले सिर छत्र धराई"।

आज उनका स्पर्श पाई हुई यह लेखिनी मानों चुप ही नहीं हो रही है। मानों इसकी गति इसके काबू में नहीं रह गई है– अथवा यूं कहूँ कि आज दिव्य–विभूति की दैविक research हर दैविक गहनता को समस्त के हित स्पष्ट करके मानों उनके विराट्–हृदय में समाये समस्त के हित दैविक प्रेम की गहनता को भी समक्ष में उज्जवल कर रही है। इसका एक दैविक–भेद

मैंने अपनी दशा की अनुभूति द्वारा ये पाया था और इसे बाबूजी को लिखा था कि मैं देख रही हूँ कि मेरा रोम–रोम, जर्राज़र्रा मेरे समक्ष में बिखरा पड़ा है और हर कण मानों उनके स्वरूप में ही नहाया हुआ है। मानों मेरे हर कण ने मुझे अपने से हटाकर, अपने को 'आपके' समक्ष अर्पण कर दिया है। बस इतना बताने के लिये कि मेरे हर कण–कण में आप ही समाये हुये हैं– एवं ये आपके ही समर्पित है। श्री बाबूजी ने प्यार में डुबोते हुए लिखा कि तुम्हारा surrender पूर्ण हो गया है। कदाचित दैविक अवतरण ने भी समस्त के हित अपने दैविक–प्रेम की गहनता को एवं अपने विराट हृदय के दैविक निवेदन को भी समस्त के हित बिखेर दिया है। उनके दैविक Research की एक गहनता एवं Reality जो मेरे सामने अपने बारे में कुछ लिख पाने हेतु मुझे मजबूर कर रही है वह यह है कि 'ध्यान की पूर्णता' के आभास में जब हम इस अनुभूति को पाने लगते हैं कि शरीर धारण किये हुये भी श्रीबाबूजी की कृपा एवं उनके ध्यान में डूबने का सौभाग्य हमें मिल गया है तब उन्नति को सीमा के परे की अनुभूति में मैंने पाया था कि ध्यान, धरा के स्पर्श (Matter) से भी परे हो जाता है। तब मैंने अनुभव में यह भी पाया कि चलते हुये और जानकर छूने से भी मेरे पैर कभी पृथ्वी का स्पर्श पाते ही नहीं। इतना ही नहीं मैंने बाबूजी को लिखा था कि पृथ्वी पर चलते–फिरते शरीर को मानों मैं कहीं ऊपर से अपने बाबूजी के नेत्रों से ही निहार पा रही थी। क्या ऐसी अनुपम गति के लेखन का सौभाग्य किसी भी लेखिनी ने कभी पाया होगा? यदि पाया होता तो कहीं न कहीं इसका ज़िक्र तो जरूर मिलता। मेरे बाबूजी का उत्तर था कि "ध्यान में सतत् रूप से रमी रहने के कारण तुम जिसका ध्यान कर रही थी– उसमें ही लय–अवस्था पा गई हो। तुम्हारे रहने का

ठिकाना अब शरीर नहीं बल्कि Divine बन गया है''– कारण यह है कि तुम लय अवस्था पा गई हो। आज इस लेखन की गरिमा को मेरी पुस्तक ने चूमा है क्योंकि ये भी 'उन' चरणों का चुम्बन पा जायेगी। इसका एक समुचित कारण भी है कि ''सृष्टिकर्त्ता के मुख्य क्षेत्र (भूमा) से कभी कोई अवतरण आया ही नहीं तो फिर दिव्य–अनुभूतियों के अनमोल रत्नों के विषय का लेखन कहाँ से मिलता। 'भगवद्–गीता', एवं 'रामचरित्मानस' का अवलोकन तो हमें भरपूर मिल रहा है तथा भगवान राम एवं कृष्ण के दर्शन की अनपायनी–गतियों का अनुभव तो हमने लेखन में पाया है, गाया है और आनन्दमग्न भी हुये हैं। किन्तु भूमा या Ultimate आदि की शक्ति तो सदा ही मौन रही है एवं अपनी ही अनुपम–ओट में रही है। फिर झलक भी कौन पाता? किन्तु आज! समर्थ सद्गुरु Spiritual Giant श्री लालाजी साहब की अचूक–प्रार्थना का स्पर्श अथवा स्पन्दन– दैविक कार्य अर्थात् युग परिवर्तन हेतु उस आदि मौन को तोड़कर, उस अनन्त--सीमा के बांध को भी लाँघ गई है तभी उस अनन्त आदि शक्ति के स्रोत भूमा के गौरव–अंश श्रीबाबूजी को पृथ्वी पर उतार लाई है। चारों दिशायें सजग हो उठी, धरा गौरव--गुमानवती हो गई और आकाश अपने आदि–आनन्द को पाकर खिलखिला उठा है। अविचल–परमानन्द में डूबी Liberated Souls भी अपने दिव्यानन्द को भूलकर डोल उठी और उस दैविक मुखारबिन्दु को निहारा तो निहारती ही रह गई है। दैविक फलस्वरूप श्रीबाबूजी द्वारा धरा पर उतारा सहज–मार्ग भी आज सजग हो उठा है, अपनी प्रभुता को लुटाने के लिये। धरा भी प्रथम बार उस दिव्य के ध्यान को अपने हृदय में धारण कर दिव्य–विभूति का दर्शन पाकर खुद को भूलकर ध्यानावस्थित हो गई है– तभी तो आज उनके research द्वारा अनुभूति में

पाये दैविक–लेखन को अंक में समेट लेने के लिये जब खुले पन्ने हृदय–खोलकर उनके समक्ष बिखर गये तो उन्हें क्रमशः आज उनके दैविक अवतरण ने ही पुस्तकों के रूप में समस्त के हित रखा है। लेकिन यह कहना भी यथार्थ है कि मेरी सोई हुई लेखिनी को उनकी दैविक–शिक्षा में डूबी अनुभूतियों द्वारा लेखन में उतारने हेतु उन्होंने ही गति प्रदान की है। जानते हैं कैसे? मानव–दुर्गति को दूर करके उन्हें दैविक सुमति देकर सुगति प्राप्त कराने हेतु ही सहज से मार्ग को दिव्य–ईश्वरीय–प्रकाश से प्रकाशित करके समक्ष में रखा है। फिर उन्होंने हमारी चाल को ईश्वरीय–गति के साथ ईश्वरीय–शक्ति में भी समावेश दे दिया है। उनकी उतारी हुई सहज–मार्ग–साधना दैविक होने के कारण अनुपमेय है। उनकी दिव्य Research प्राणीमात्र के लिये मात्र दैविक–शिक्षा–स्वरूप ही नहीं है, बल्कि सहज–मार्ग–साधना द्वारा उसने अनन्त–यात्रा का द्वार ही खोल दिया है। जिसकी गति आदि में सकरी अवश्य लगती है किन्तु फिर मैंने पाया कि मानों हृदय को चीरकर बाहर निकल जाऊँ ऐसी अधीरता से भरा पत्र मैंने अपने बाबूजी को कई बार लिखा था। क्रमशः अपने होने के भाव का बंधन जैसे–जैसे खुलता गया फिर आगे विराट की यात्रा के बाद तो फैलाव ने ऐसी सीमा तोड़ दी थी कि मैंने कई बार अपने बाबूजी को लिखा था कि "सामने चटियल–मैदान ऐसा फैला हुआ है जिसका छोर ही नहीं है"। वास्तव में साधना के रहस्य के अंदर मैंने पाया कि साधना तो कुछ है ही नहीं। साधना का निम्न छोर है अहं अर्थात् जो हमारे शरीर के नाम से जुड़ा होता है फिर दैविक ध्यान में तन्मयता पाते हुये आगे उन्नति पाने पर वह छोर हमारे हाथ से छूट जाता है। तब साधना के स्थान पर उनकी दैविक शक्ति के साथ उनकी सामीप्यता का ही

विशुद्ध–अनुभव हमें मिलने लगता है। तबसे मैंने पाया कि दैविक–सामीप्यता का सहारा श्री बाबूजी ने देकर इन्हें points का नाम देकर हम अभ्यासियों के शीघ्र उद्धार हेतु अपनी निगाह में रख लिया। इसका अर्थ या तात्पर्य मैं अब समझ पाई हूँ वह यह कि उम्र व समय की दौड़ में उनकी अनन्त यात्रा की शिक्षा पिछड़ न जाये। तो इस बहाने उन्होंने मानों कुल को अपनी मुट्ठी में करके हर हालत एवं वहाँ की शक्ति का समय–समय पर वरदान देते हुये समस्त के हेतु हौंसला बरसाया है और बरसाते रहेंगे। यह अनुभव पाकर उनके हर दैविक–वरदान को मैं सदैव अपने अभ्यासी भाई–बहिनों में भरती रही हूँ और बाबूजी से प्रार्थना के साथ अभ्यासी हृदयों में सहेजकर रखती गई हूँ। ताकि वे उनकी दिव्य–देन में स्नान पाकर सशक्त होकर आगे उन्नति पाने हेतु उनके चरणों में अपना स्थान बनाते रहें। इतना ही नहीं दिव्य विभूति से दिव्यता की किरणों का दैविक–स्पर्श, अब क्रमशः दसों दिशाओं में फैलना शुरू हो गया है। जिसके फलस्वरूप दैविक–विशुद्धता का प्रसारण भी वातावरण में होता रहेगा। वास्तव में उनको पाने की अनन्त–यात्रा में मैंने जो अनुभव– गम्य–अनुभूतियों की चेतना में पाया है उसका ध्यान आते ही अपने बाबूजी के वाक्य जो मेरे पत्र के उत्तर में उन्होंने दिये थे आज भी परमानन्द पाकर मुखरित हो उठते हैं। मेरे पत्र के उत्तर में कि मुझे न जाने क्या हो गया है कि अपने शरीर को जानकर भी छूती हूँ तो भी स्पर्श कभी होता ही नहीं है। नाम पुकारे जाने पर शरीर तो कार्यरत होता है किन्तु मैं कभी वापस नहीं लौटती हूँ। मानों Divine ही मेरा देश है, Divine स्पर्श ही मेरा स्पर्श बनकर फैल गया है। ''श्रीबाबूजी महाराज का उत्तर था कि खुशी है कि मुझे तुम्हारा ध्यान आने पर भी तुमसे मुलाकात नहीं होती है। श्री लालाजी साहब की

कृपा ने तुम्हें Divine सारूप्यता की विशुद्ध–श्रेष्ठ दशा का यह वरदान दिया है। तुम इसी तरह आगे बढ़ने की खुशखबरी देती रहो। ईश्वर ऐसा ही करे''। लिखकर मानों उन्होंने अपनी दिव्य–आशीष की मुहर से अपने वरदान को पावन श्रृंगार दे दिया। एक दिन क्रमशः जब यह श्रेष्ठ–अनुपम अनुभूति भी उनमें ही लय हो गई थी तब मैंने श्री बाबूजी को लिखा था कि 'संसार में शरीर ऐसे रह रहा है जैसे सागर में डूबकर मृत्यु के बाद शरीर पानी के ऊपर उतरा आता है'। श्रीबाबूजी ने लिखा था कि 'मैं क्या लिखूं जबकि ईश्वर में पूर्ण लय अवस्था पा जाने के कारण 'सायुज्यता' अर्थात् ईश्वर में लय अवस्था की अंतिम–दशा तुम्हारे में स्वयं ही मुखरित हो उठी है'। इतना ही नहीं फिर ईश्वरीय–शक्ति के केन्द्र में Dip देकर जो बाहर निकाला तो मेरा अनुभव अवाक हो गया, बेजुबान हो गया किन्तु बाबूजी की दिव्य–इच्छा ने मुझे लिखने की चेतना दी तब मैंने उन्हें लिखा था कि देखूँ तो ईश्वर, स्पर्श करूं तो ईश्वर मानों आपकी बिटिया का कुल ही ईश्वर हो गया है। उनका उत्तर था कि ''मैंने जो अपने सहज–मार्ग system में साक्षात्कार से श्रेष्ठ ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य अभ्यासियों को दिया है वह वही दैविक–वरदान है जो दशा के रूप में तुम्हारे में प्रत्यक्ष हो उठा है। अब भला मैं कैसे और क्या लिखूँ उनकी दैविक–research के फलस्वरूप सहज–मार्ग के गौहर के विषय में। आज श्रेष्ठ–अवस्था की दैविक–अनुभूतियां मेरे समक्ष में इस तरह से उज्जवल हैं कि मानों उनकी यह Divine Research आध्यात्मिक क्षेत्र में Divine अर्थात् दैविक शिक्षा का केन्द्र बन गई है। यह वरदान मेरे ही लिये नहीं है, बल्कि उन सारे प्रिसेप्टर्स भाई जो अपने बाबूजी से योग पाये हुये हैं उनकी शक्ति द्वारा अभ्यासियों की सेवा में रत हैं उनके लिए भी है। वास्तव में उनका यह

दैविक–अनुसंधान, अंतिम–सत्य का दर्शन है। अपने बाबूजी की दिव्य research का वरदान पाकर मेरी अनन्त–यात्रा के माध्यम से अन्तिम–सत्य तक की उन्नति की राह में आने वाली बाधक बातें समस्त के लिये और हमेशा के लिये दूर हो गई हैं। यों कह लें–

"कोई माया, कोई भय, भ्रम न रहा,
कोई पर्दा, कोई संशय न रहा।
आइना शक्ल मेरी क्या जाने,
तूँ रहा पास तो फिर मैं न रहा।।

●

अनुभूतियाँ शिक्षा बन गईं

सहज–मार्ग दिव्य–देश का दर्शन है। अनन्त–यात्रा, दर्शन अथवा फिलॉसफ़ी (भेद) है अन्तिम–सत्य के देश की। सहज–मार्ग–साधना का पथ दिव्य–प्रकाश से प्रकाशित दिव्य–अवतरण श्रीबाबूजी महाराज की दैविक–इच्छा–शक्ति से तराशा हुआ, उनके दिव्य–संकल्प एवं उनके दिव्य–अवतरण के प्रसाद स्वरूप Ultimate अथवा भूमा से योग पाये हुये हैं। सहज–मार्ग साधना "हृदय में ईश्वर–मौजूद है" के ध्यान की दृढ़ता है जो समस्त के लिए 'श्री बाबूजी' की ईश्वरीय धारा प्रवाह में डूबी नसैनी (सीढ़ी) है। उनकी Divine-Will का अवलम्बन, उनकी दैविक–खोज की गरिमा है जो हम अभ्यासियों को हर तरह से आध्यात्मिक–क्षेत्र में तीव्र–गति से उन्नति पाने के योग्य बनाती है। अपनी दिव्य–खोज अथवा Research द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्म दैविक भेद को समस्त के लिए उज्ज्वलता प्रदान कर रही है उनकी यह डिवाइन–विल। मैंने खुद पर उनके द्वारा उतारी गई आदि से लेकर अनन्त–यात्रा अथवा अंतिम सत्य तक के हर क्षेत्र अथवा दैविक मुख्य Regions की खोज की गहराई में उतर कर यह सत्य उज्ज्वल हुआ पाया है। उनमें पाई हुई अनुभूतियाँ आज मेरे लिए उनके द्वारा प्रदान की हुई अभ्यासियों की सेवा के लिए दैविक–शिक्षा बन गई है। आदि से लेकर अनन्त–यात्रा तक के हर क्षेत्र का चित्र एवं दशा की अनुभूति अब 58 वर्ष बाद भी मानों चित्र के समान समक्ष में इसलिये उतर रही हैं कि हालत की किस सूक्ष्मता एवं विशुद्धता तक ले जाकर मैं अपने समस्त अभ्यासी–भाई–बहनों की श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सेवा करने में सफल रहूं। यही उनकी शिक्षा है मेरे लिये और समस्त के लिये उनके दैविक–प्यार का उज्ज्वल एवं साँचा संदेश है, जो उन्होंने अनुभव में उतार कर, समस्त के समक्ष रखा है।

सहज–मार्ग–साधना का मर्म तो देखिये कि दैविक–शक्ति से प्लावित हुई उनकी यह दैविक साधना अंतर में विद्यमान ईश्वर से योग पाये हुये है। कदाचित् यह उनकी दैविक कृपा है समस्त के लिए जिसे अपनाकर अभ्यासी ईश्वर की सानिध्यता के अनुभव को पायें जिससे हृदय ईश्वर–प्राप्ति की चाह से पुलक उठें। हमारी टूटी हुई मनस्–शक्ति एवं बिखरा हुआ विश्वास दैविक–शक्ति का अवलम्बन पाकर सशक्त हो उठे। भ्रमित हुई बुद्धि सही दिशा पाकर हमारे अंदर सद्विचार एवं सद्व्यवहार को जगाकर हमें दैविक सदाचार (अख़लाक़) की सजीव प्रतिमा के सदृश बना दे। इतना ही नहीं नेत्रों के समक्ष लौकिकता में डूबे ठोस अंधकार को सहज–मार्ग में फैले ईश्वरीय–प्रकाश की तपिश से पिघलाकर दूर कर दें। हमारे कुल–अंतर को ईश्वरीय नूर (तेज) से आलोकित कर विशुद्ध बना दे। आज यह अनुभूति ईश्वर–प्राप्ति की चाह में पगे अभ्यासीगण पाते जा रहे हैं। कदाचित् यही कारण है कि उनका यह दैविक–कथन इस दृढ़ता की नींव पर खड़ा है कि "एक दिन आध्यात्मिकता के लिए एक सहज–मार्ग सिस्टम ही विश्व में व्याप्त होगा अथवा Reign करेगा। यह दैविक–सत्य सहज मार्ग–साधना में पाई आध्यात्मिक–दशाओं की अनुभूतियों द्वारा मेरे समक्ष में व्याप्त भी हो गया है। यह कहना नितान्त आवश्यक है कि सहज–मार्ग कोई शिक्षा नहीं है कि 'यह करो, वह करो' यह तो श्री बाबूजी द्वारा तराशी हुई सहज–साधना का दैविक–तरीका है, साक्षात्कार के पश्चात् ईश्वर–प्राप्ति के लिए। कहना न होगा कि भक्तों ने साक्षात्कार पाया है, भक्ति की अनुपम दशा में विभोर होकर इसका गुणानुवाद भी गाया है किन्तु आज तक कोई लेखनी ईश्वर–प्राप्ति की अनुपमेय–अनुभूति के विषय में नहीं उठ पाई है। जानते हैं क्यों? धरा पर अवतरित–अवतारों से तो हम सदैव से ही जुड़े हुए हैं इसलिये उनके

दैविक–साक्षात्कार पाने की तड़प ने मानव–हृदय में अवतारों के प्रति भक्ति का सम्पुट सदैव से ही लगा रहा है। इतना ही नहीं उनकी भक्ति एवं उनके अनुभव ने सदैव ही हमें भक्ति के द्वारा साक्षात्कार पाने की शिक्षा दी है परन्तु सहज–मार्ग–साधना का यह सिस्टम अनुपमेय है। इसीलिए आज मैं 'सहज–मार्ग' साधना द्वारा पाई हुई अनुभूतियाँ जो आज मेरे समक्ष, समस्त के हित शिक्षा के रूप में स्पष्ट होकर फैली हुई हैं उनको लिखने का प्रयास कर रही हूँ। सर्वप्रथम दिव्य विभूति श्रीबाबूजी महाराज का कथन कि "सहज–मार्ग बनाया नहीं गया है बल्कि यह दैविक–सिस्टम (तरीका) है जो ऊपर से उतरा है अर्थात् स्वयं Divine ने ही हमें प्रदान किया है।" कदाचित् यही कारण है कि इसका प्रारम्भ क्रिया के बंधन से मुक्त है। इसीलिये श्री बाबूजी ने कहा है कि यह Natural Way of Realization है। जैसे सृष्टि ऊपर से उतरी हुई है, तो स्वयं Divine अथवा Creater इसमें विद्यमान है एवं समस्त में उसकी ही शक्ति व्याप्त है। आत्म रूप में वह प्राणीमात्र के अंतर्मन में विद्यमान है। अर्थात् अपने से उत्पन्न समस्त में वह स्वयं व्याप्त हुआ है। उसी प्रकार ऊपर से उतरे सहज मार्ग में जो उसकी ही प्राप्ति का System (तरीका) है, इसमें वह स्वयं ही विद्यमान है। आज मैं इस साधना की गहनता का स्पर्श पा सकी हूँ कि हमारे श्रीबाबूजी ने सहज–मार्ग– साधना में यह सारगर्भित बात ध्यान में रखने को बताई है और इस सत्य को अपने सतत–स्मरण (Constant Rememberance) में रखने को बताया है कि 'ईश्वर हमारे अंदर मौजूद है'। हम अभ्यासियों के लिये यही अभ्यास हमारी साधना है जो कि प्रथम दिन से ही हमें साध्य से जोड़े रखने का प्रयास होता है। इस तरह हमारा ध्यान एवं विचार ईश्वर से चिपका रहे यही सहज–मार्ग–साधना की वास्तविकता है और सहज–मार्ग

साधना का यही तरीक़ा है ईश्वर से योग पाते हुए उसकी प्राप्ति का। इस बात की मुख्यता भी हमारे समक्ष स्पष्ट हो जाती है कि हमारे श्रीबाबूजी ने अपनी दैविक–प्राणाहुति–द्वारा हमारे हृदयों में ईश्वरीय–धारा का पावन–प्रवाह अपनी दैविक–इच्छा–शक्ति द्वारा देकर इसकी गरिमा को और भी विशुद्धता प्रदान की है। ऐसी दैविक–शिक्षा के परिणामस्वरूप मेरी इस अंतर्दशा ने विभोर होकर ही एक दिन मेरी लेखिनी को गीत के इस लेखन के लिए विवश किया था कि 'इंसान में ईश्वर–तत्व भरा, साक्षी बन साथ दिया न दिया'। क्योंकि तद्‌रूप हो जाने पर फिर और लिखा भी क्या जा सकता है। इतना ही नहीं इस अनुपमेय सहज–मार्ग–साधना द्वारा पाई अनुभूतियों ने मुझे ऐसी सटीक शिक्षा दी है जो समस्त के हित में आध्यात्मिक–शिक्षा के रूप में तथा हर आत्मिक–दशा के लेखन के समय भी मेरे समक्ष स्पष्ट हो जाती है। इसे उतार पाने के लिये शब्द अपना चयन स्वयं ही कर लेते हैं। इतना ही नहीं उनके दिव्य–संकल्प में प्यार और उनकी दिव्य–दृष्टि में पलते अभ्यासियों के हृदयों को आध्यात्मिक क्षेत्र में यह शिक्षा कैसे विकास दे रही है, यह शिक्षा भी मैं सहज–मार्ग–साधना में पाई अनुभूतियों की शिक्षा के रूप में पा रही हूँ। इससे महत्–पुरुषों का यह कथन सिद्ध हो गया है कि 'ब्रम्ह–विद्या पढ़ाई नहीं जाती है बल्कि अंतर में उतारी जाती है। आज मेरे समक्ष यह सत्य भी स्पष्ट हो गया है कि आत्मिक उन्नति में पाई हुई अंतर्दशायें ही हमारे समक्ष शिक्षा के रूप में आ जाती हैं दूसरों को संवारने के लिए। सहज–मार्ग साधना में भक्ति में तन्मय हो जाने पर एवं अपने अंतर में दिव्य–विभूति की सामीप्यता का सेंक पाते हुए मैंने अपने होने के भाव को पिघलता हुआ पाया था। समक्ष में व्याप्त वह अनुभूति ही आज मेरे लिये साँची शिक्षा बनकर अन्य अभ्यासी भाई–बहिनों में उतार पाने के लिए बहुधा आकुल हो जाती है।

यह आकुलता सहज–मार्ग–शिक्षा की देन है जो दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी के समस्त के हित प्यार में डूबे दैविक–संकल्प का ही नतीजा है। वास्तव में मैं डंके की चोट पर इस दैविक तथ्य के बारे में कह सकती हूँ कि उनका दैविक–संकल्प ही सहज–मार्ग की दैविक–शिक्षा के रूप में समस्त के लिए हमारे समक्ष मौजूद हुआ है। ज़माना रंग लायेगा ही, दैविक–नूर ही मानव के सौंदर्य के रूप में उज्ज्वलता पायेगा, जो समय के गर्भ में युग के लिए दैविक–शिक्षा के रूप में समाया हुआ है। उनकी दैविक–इच्छा–शक्ति ही जमाने के पथ को बुहारती हुई वातावरण को अपनी दैविक शिक्षा से पूर्ण बना रही है और बनाती रहेगी। हम अभ्यासियों की अनुभूतियां ही शिक्षा के रूप में आने वाली पीढ़ियों के हित अनन्त यात्रा के पन्ने खोलती जायेंगी। ऐसे वरदान की छाप तो मेरे लेखन को मिली ही हुई है क्योंकि लेखनी को पकड़ने वाले 'वे' स्वयं हैं और अंगुलियाँ मेरी हैं जो लेखन की दैविक शिक्षा में डूबी हुई हैं।

अनुभूतियों की शिक्षा वह सत्य है जो स्वयं प्रकाशित है क्योंकि यह हृदय में प्रवेश पाकर ही बोलती हैं। अपने बाल्यकाल से ईश्वरीय–खोज में कई तरीके बदलते हुए भी मेरे अंतर ने उनकी सामीप्यता का स्पर्श नहीं पाया, जब से सहज–मार्ग साधना की शिक्षा या अभ्यास श्रीबाबूजी महाराज द्वारा पाया तबसे मैंने अंतर में उनकी प्राणाहुति के प्रवाह द्वारा निरंतर उनकी दैविक शिक्षा को हृदय में उतरता हुआ पाया है। मैंने इस सत्य को भी स्पष्ट हुआ पाया है कि साक्षात्कार तक के सारे अनुभव अन्य अभ्यासियों की आत्मिक–उद्धार की सहायतार्थ समक्ष में आ जाते हैं।

वास्तव में सहज–मार्ग शिक्षा या साधना का मर्म है ध्यान। ध्यान दर्पण है अपने हृदय का– कदाचित् इसीलिये संत कबीर

की वाणी बोल उठी थी कि 'घूंघट के पट खोल रे तोहे राम मिलेंगे'। साध्य से योग पाई साधना के अभ्यास से अंतर में छाये आवरण दूर होने लगते हैं। हृदय का दर्पण स्वच्छ होते ही हमें अपने हृदय में ईश्वर की मौजूदगी का आभास मिलने लगता है। श्रीबाबूजी ने सहज–मार्ग–साधना के अंतर्गत हृदय में ईश्वर मौजूद है यह ध्यान रखने का अभ्यास दिया है। विचारों द्वारा हमारे ध्यान का बिखराव न हो इसलिये बार–बार इस ध्यान में विचार द्वारा सतत् स्मरण में रखने को कहा है। क्या खूब आध्यात्मिक शिक्षा का यह पुरस्कार उन्होंने हमें दिया है। ध्यान में 'वह' समाता रहे और विचार इस ध्यान को रखने में busy रहे तो दैविक स्मरण क्रमशः सतत् होता जायेगा। मैंने अपनी अनुभूतियों के दर्पण में यह तथ्य तब प्रत्यक्ष हुआ पाया था जब हृदय–रूपी दर्पण की भौतिक–गर्द साफ् हो गई थी, तब मैंने ईश्वरीय–मौजूदगी का साक्षात्कार हृदय में पाया था। इतना ही नहीं हृदय–रूपी दर्पण साफ़ हो जाने पर एक रहस्य मैंने और समझ पाया था कि सतत्–रूप से ईश्वरीय खोज के हित ध्यान में लयलीन रहते हुए Sub-concious-mind जो प्राणी मात्र के अंदर printer के सदृश होता है उसके ऊपर भी लौकिक ध्यान या विचारों द्वारा चढ़ी हुई गर्द साफ़ होकर वह विशुद्ध आइने की भाँति हो जाता है। जो हमें ईश्वरीय छवि का सतत्–दर्शन एवं सतत् स्मरण प्रदान करके मानो बताता है कि तुम्हारी अनुभूति, तुम्हारे लिये शिक्षा बनकर औरों के हित कार्य कर पाने की सहजता देती रहेगी। मानो हृदय का विशुद्ध–दर्पण समस्त के हित कार्य हेतु दैविक–दीक्षा प्राप्त कर लेता है।

अब आगे देखें तो पायेंगे कि ध्यान दर्शन होता है अपने अंतर्मन का। अंतर्मन की परिभाषा की पूर्णता का सौभाग्य आज मेरी लेखनी ने पाया है और शब्दों को गौरव–प्रदान किया है

उनकी दैविक–शिक्षा ने। तो सुनें– मैंने अपनी अन्य पुस्तक में लिखा है कि– श्री बाबूजी को सामने देखकर मेरा जी उन्हें अपने में समेटकर न जाने कहाँ छुप गया था। उसकी खोज के निरन्तर ध्यान ने वास्तव में मेरी साधना की शान्ति हर ली थी और आत्मिक–दशाओं की अनुभूतियों के आनन्द को भी पी लिया था। अब कितने समय बाद आज मेरी अनुभूतियाँ मानो अंतर्मन की विशुद्धता बनकर मुझे बता रही हैं कि जी के छुपने का स्थान अंतर्मन ही था। इसका अर्थ मैंने यह पाया है कि जिसे हम 'मन' की संज्ञा देते आये हैं वह अंतर्मन का प्रतिबिम्ब मात्र है। मैं भली–भांति इस बात को समझ गई हूँ कि वास्तव में साधना में डूबी हुई साध्य के सौंदर्य के नूर में पगी अनुभूतियों की शिक्षा ही इस सत्य का प्रतीक है कि 'ध्यान दर्शन है आंतरिक–शक्ति का'। क्योंकि आज पुस्तक लिखते समय मानो दैविक अनुभव में डूबी अनुभूतियाँ शिक्षा के सदृश मेरे सन्मुख हैं और बता रही हैं कि ध्यान द्वारा पाये हृदय के दर्शन ने मुझे आगे बढ़ते रहने के हौंसले की शक्ति प्रदान की थी। आज अंतर्मन की गति ने मेरे समक्ष यह भी प्रत्यक्ष कर दिया है कि 'Confidence की परिभाषा क्या है'? मेरी अनुभूति मुझे यह बता रही है कि 'जी' जो अपने 'बाबूजी' को लेकर छुप गया था वह स्थान अंतर्मन का द्योतक है। जब अंतर्मन में मेरे जीवन–सर्वस्व अनन्त शक्ति के दाता, युग के विधाता ही बिराज गये तब मैंने पाया कि यह कथन सही नहीं था कि अब confidence मुझमें आ गया है। बल्कि मैंने पाया कि जब ध्यान में 'वे' ही समा गये थे तो feeling का सम्बन्ध मात्र उनसे ही था और वे ही मेरा confidence थे, क्योंकि मेरा खेल तो अपने होने के भाव को भूलने के साथ ही समाप्त हो गया था। ध्यान जब 'उनके' रंग में रंग जाता है, तब हमारे में उठने वाले भाव और लेखन में अनुभूतियों की ही शिक्षा का मुख्य–स्थान होने लगता

है। सहज–मार्ग system की साधना के साथ अनुभूतियों में पाई शिक्षा भी अद्वितीय है, इस रहस्य को भी मैंने समस्त के हित उजागर कर दिया है। एक मर्म मैंने साधना में यह भी पाया है कि हर अनुभूति उनकी दिव्य–सामीप्यता की छवि की छाया का ही प्रतीक होने से उनकी दैविक–शक्ति की सामीप्यता का भी योग पाती जाती है। आज मेरे 'बाबूजी' अपने द्वारा ही लिखाये इस लेखन द्वारा मानो सहज–मार्ग दैविक–मार्ग है जो ऊपर से उतरा है, Divine का प्रतीक बनकर हमारे समक्ष है। इसके अतिरिक्त इस गोपनीय–रहस्य को भी समस्त के प्रति उजागर कर दिया है कि आगे चलकर अनुभूतियों में पगी हुई यह शिक्षा प्राणाहुति के प्रवाह के साथ कैसे दूसरों का जीवन–सफल बनाने में सहायक होती हैं। भला बतायें उनकी दिव्य–कृपा एवं मानव–मात्र के प्रति खुले submission के प्रतीक, सहज–मार्ग की अद्भुतता (Uniqueness) के बारे में लिख पाने की किस लेखनी में क्षमता है। हां मेरी लेखनी के भाग्य को सौभाग्य बनाने के लिए इसे मेरे बाबूजी ने ही अपना वरदान बनाकर मेरी उंगलियों का स्पर्श दे दिया है।

अब आगे सुनिये कि यह लेखनी क्या कहने जा रही है? ध्यान दर्शन है मनस् की पूर्णता का जिसमें सूक्ष्म 'शरीर' कारण शरीर के साथ ईश्वरीय–अंश रूप में आत्मा का वास है। अब आप देखें कि मेरे समक्ष में जो जी मेरे बाबूजी को छुपाकर जब अपने घर अर्थात् अंतर्मन में जा बैठा था तब उनकी शिक्षा के फलस्वरूप मैंने पाया कि 'वे' बाबूजी तो 'अनन्त' भूमा का प्रतीक है। यह सत्य मैंने ध्यान में प्रत्यक्ष हुआ पाया है। इसका यह बहुत छोटा सा उदाहरण भी मेरी अनुभूति आपके समक्ष रखने जा रही है जिसे आप ध्यान से ही पढ़ें यह अनुरोध मेरी लेखनी का है क्योंकि इसका लेखन तभी तो सार्थक होगा जब कि सब लोग इसकी

अनुभूति की शिक्षा को पूर्णतय: अपनायें। मैंने बाबूजी को अपनी अंतर्दशा की अनुभूति को पत्र में जब लिखा था कि मुझे लगता था मानो मेरा अंतर्मन पसीज रहा है। इस अनुभव से आज मैं यह शिक्षा पा रही हूँ कि दिव्य–सामीप्यता के सेंक की दैविक तपिश ने मेरे अंतर्मन के अंधेरे को दूर करते हुए इसके सीमित–दायरे को भी पिघलाना शुरू कर दिया था, ताकि तेज उस सीमित रेखा के पास प्रतिष्ठित सूक्ष्म–शरीर तक पहुँच जाये। मुझे अनुभव में लगने लगा था कि ध्यान अब मुझसे भी परे कहीं टिकने लगा है। तब मेरे 'बाबूजी' ने लिखा था कि "मुझे खुशी है कि दैविक ध्यान तुम्हारी सीमा के पार सूक्ष्म–शरीर में प्रवेश पा गया है"। उनका यह कथन मेरे लिए आज अनुभूति की शिक्षा के समान मेरे सामने व्याप्त है। मात्र मेरे 'बाबूजी' की मुझसे ऐसी दैविक–अपेक्षा थी कि "तुम आध्यात्मिक क्षेत्र की अपनी आदि से लेकर अनन्त तक की यात्रा का अनुभूतिमय विवरण दोगी। इतना ही नहीं हर क्षेत्र एवं हर points तक की मेरी दैविक खोज का विवरण तुम अपनी अनुभूति द्वारा लिखकर मेरी अपेक्षा को पूर्ण करोगी। मेरी यह दिव्य खोज ही साक्षी होगी अनन्त यात्रा अर्थात् Ultimate अथवा भूमा के देश तक की।" बन्धुओं आज उनकी इस अनपढ़ बिटिया का हौंसला तो देखिये कि अनन्त–यात्रा तक की अनन्त–अनुभूतियों से उनके ही अनन्त–दिव्य प्यार की डोर में अनुभवों की शिक्षा में गुँथी हुई माला उन्हें चढ़ाने जा रही हूँ। अब तक जो पुस्तकों में अपने अनुभवों के हीरे–मोती तो उन्हें चढ़ाती आई हूँ किन्तु आज इस पुस्तक ने मुझे आध्यात्मिक–क्षेत्र में शिक्षा की निपुणता का विवरण लिखने का सौभाग्य प्रदान किया है, इसलिए आज उनके ध्यान से सुथरी यह पुस्तक रूपी माला उनके ही चरणारविन्दों में समर्पित है। इस पुस्तक ने किस दैविक–संगम में स्नान पाया है इसे सुनकर तो आप स्वयं ही गौरवान्वित हो उठेंगे– उनके द्वारा

ही पाया सहज मार्ग और उनके ध्यान में, उनमें ही पाई लय–अवस्था में उनके ही अपने देश अर्थात् भूमा तक की अनन्त–यात्रा का यह दैविक संगम है। प्राणिमात्र को अपने दैविक संकल्प की शक्ति में स्नान कराता हुआ, युग को दैविक–युग–परिवर्तन की दिशा में आकर्षित करता रहेगा। आज मैं स्पष्ट देख पा रही हूँ कि इस पर मेरे बाबूजी की अनन्त– आदि–शक्ति की मुहर लग गई है।

हाँ तो सूक्ष्म–शरीर का पिघलना उनके दिव्य–ध्यान का दैविक–करिश्मा था। अब आगे सुनें–सूक्ष्म–शरीर हमारे संस्कारों का आगार है तो ध्यान ने जब उसमें प्रवेश पाया तब उसकी पिघलन के साथ जब आगार ही न रहा तो संस्कार कहाँ टिकते। जब अनुभव में मैंने यह दशा पाई तो श्रीबाबूजी ने लिखा था कि "संस्कारों का तुम्हें छोड़कर भागना और मेरे पास आना" यह बताता है कि जगह न रहने के कारण अब वह तुम्हें छोड़कर भाग रहे हैं। मेरे ध्यान में तुम लय रही हो तो संस्कार भी मेरे पास आयेंगे। लेकिन तुम डरना मत समर्थ–गुरू की कृपा ने उन्हें बजाय भोग की शक्ल में आने के उन्हें भस्म करने की सामर्थ्य भी मुझे दी है, वह स्वयं ही भस्म हो जायेंगे"। अब ऐसा कमाल भी देखिये कि दैविक–शिक्षा द्वारा मुझे सब कुछ समक्ष में फैलाकर सिखा रहे हैं। अब संस्कारों के भस्म की ही बात देखिये कि Divine का तेज उन्हें उनके निकट पहुँचने ही कहाँ देगा क्योंकि अनन्त तेज के वृहत् क्षेत्र के निकट आते ही वह स्वयं ही भस्म हो जायेंगे। जब 'उनकी' मौजूदगी का पावन सेंक सूक्ष्म–शरीर को ही पिघलाने लगता है अर्थात् प्रकृति की रची अर्थात् सूक्ष्म–शरीर की भी ठोसता उनकी सामीप्यता का सेंक बर्दाश्त ही नहीं कर पाती तो भला हमारे बनाये संस्कारों की तो मजाल ही क्या थी।

अब आगे सुनें कि ध्यान दर्शन है अपने होने अर्थात् कारण–शरीर

का। एक बात उपरोक्त लेखन द्वारा तो उज्ज्वल हो गई है कि सूक्ष्म–शरीर को खुराक मिलती है सूक्ष्म शरीर में ठहरे ठोस विचारों एवं संस्कारों की। अतः अब जब भोजन मिलना ही बन्द हो गया तब अंतर में बसे दिव्य–अवतरण श्री बाबूजी का तेज सूक्ष्म शरीर में पिघलाव लाते हुये, कारण–शरीर अथवा कारण मन तक पहुंचने लगता है। तबसे ही क्रमशः हमारे अस्तित्व का भाव उनमें ही योग पा जाता है। एक रहस्यमई अनुभव–गम्य उनकी खोज की शिक्षा आज मेरे समक्ष नवीन रूप में प्रगट हो गई है कि जबसे अस्तित्व का योग उनमें लय अवस्था पा लेता है तबसे ही मैंने पाया कि आत्मा जो ईश्वर के अंश रूप में हमारे में विद्यमान है वह भी उनसे पृथक् न रहकर उनमें ही लय होने लगती है। कैसी क्रमिक है उनकी अनुभूतिमयी शिक्षा। जब मैंने अपने बाबूजी को पत्र में अपना अनुभव लिखा कि "जो बातें आत्मा के लिए कही जाती हैं– हवा उसे सुखा नहीं पाती है, पानी इसे भिगो नहीं पाता है आदि–आदि। मुझे लगता है कि ये बातें मेरे लिये लिखी गई हैं या बोली जा रही हैं। आत्मिक–शक्ति मुझे सदैव आपसे ही सम्बन्धित लगती है कैसा साँचा प्रतीक है उनकी दैविक–शिक्षा में पाई यह अनुभूति। मेरे श्रीबाबूजी का उत्तर था कि "तुम्हें **Self-Realization** की हालत मुबारक हो। ईश्वर तुम्हें दिन दूना रात चौगनी उन्नति दे और इस पर आमीन (ऐसा ही हो) कहकर मानों अपनी दैविक मुहर देकर शक्ति भी भर दी थी। यही कारण है कि मैंने पाया था कि हर उन्नत अवस्था पाकर मैंने अनुभूतियों में शक्ति की सम्पन्नता का अनुभव भी सदैव पाया था। आगे मैंने एक अनुभूति यह भी पाई थी कि 'आत्मा परमात्म–तत्व' में विलीन हो जाती है। इस अनुभूति में रंग कर ही मेरे गीत की लाइन भी गुनगुना उठी थी कि "जब तत्व में तत्व समाय गयो, साक्षी बन साथ दिया न दिया"। अब जब अनुभूति की शिक्षा ने

पाया कि आत्म–तत्व भी परम–तत्व में विलीन हो गया तो फिर ईश्वरीय–देश का दर्शन ही मेरे समक्ष में फैल गया। तभी मेरी अनुभूति ने पाया था कि अब तेरा वास्तविक–देश तेरे समक्ष में है मानो ईश्वरीय–देश के दैविक आकर्षण की सामीप्यता अब उनकी बिटिया को उनकी दैविक Research की गरिमा को उजागर करने के लिए ईश्वरीय नेह–निमंत्रण का आभास देने लगा था। वह दशा आज जब मेरे सामने आई है तो मानो अनुभूति ने पांव पसार दिये हैं। जानते हैं क्यों? क्योंकि तब मैं अभ्यासी के रूप में हर अनुभूति का आनन्द ले रही थी। उनकी दैविक Research मानों पारदर्शी आइने की तरह से हर अनुभूतियों को अपने में समेटती गई थी। – यह भेद मैं आज जान पाई हूँ। इसका तात्पर्य क्या था यह मैं आज समझ गई हूँ। उनका प्राणिमात्र के प्रति दैविक–प्यार जो संकल्प की शक्ति से सराबोर था उसमे कहीं न कहीं यह भाव भी छुपा हुआ था कि अनन्त–यात्रा की यह पूर्ण अनुभूतियाँ शिक्षा के रूप में समस्त के हित सदा उज्ज्वल रहेंगी। उनकी दैविक–खोज के ऐसे तात्पर्य में नहाई मेरी लेखनी मुझसे कह रही है कि अपनी अनुभूतियों के लेखन के साथ ही वह स्वयं ही दिव्य–आकर्षण से भरपूर होकर सदा के लिए उज्ज्वल हो गई है। वास्तव में मैंने पाया है कि "अनुभूतियों से भरा मेरी पुस्तकों का लेखन मात्र मेरे बाबूजी का Divine करिश्मा ही है जो समस्त के हित अब शिक्षा के रूप में मेरे समक्ष व्याप्त है। मैंने सदैव पाया है कि अपने अभ्यासी भाई–बहनों की सेवा हित बैठते ही उनकी progress के लिये समक्ष में अनुभूतियाँ अपना द्वार खोलकर मुस्करा उठती हैं। जानते हैं क्यों? क्योंकि उनमें समाया मेरे बाबूजी का दैविक–संकल्प, हर्षित होकर मुझसे कहता है कि "खूब लुटाओ, इतना लुटाओ कि अनन्तता भी, दूसरों की सेवार्थ 'शिक्षक' बनकर अपनी शिक्षा को लुटाने में कभी न हिचके।"

मुझे भली–भाँति स्मरण है कि किन्हीं लोगों ने श्रीबाबूजी से पूछा था कि "आप तो भूमा या अंतिम–सत्य की बात करते हैं जो हमें बिल्कुल अनजाना सा लगता है एवं अंतर में इसका कोई सम्बन्ध ही अनुभव नहीं होता है। ईश्वर के लिए तो हृदय में कहीं न कहीं विश्वास के साथ 'उनसे' हमारे सम्बन्ध का धागा तो लगता भी है। यही नहीं ईश्वर का साक्षात्कार भक्तों ने सदैव पाया है। भूमा या अन्तिम–सत्य शब्द ही हमारे लिये अपरिचित है।" श्री बाबूजी ने कहा कि "तुम ठीक कहते हो–सच भी यही है कि आज तक कोई वहाँ से आया ही नहीं जो उनकी याद लोगों को दिलाता। जो उनके अनन्त–देश की दैविक मर्यादा के साथ उनके प्यार का संदेश तुम्हें देता कि सृष्टि की वास्तविक जननी तो वही है। श्री बाबूजी ने कहा कि यह तो सभी जानते हैं कि रचना के लिए परम शक्ति के भंडार में स्पन्दन हुआ। फलस्वरूप रचना हेतु उनकी शक्ति द्वारा ही यह पसारा हुआ है।" इसीलिये इस आदि–सत्य को समस्त के लिए समक्ष के हित में उज्ज्वल करने हेतु अनन्त–शक्ति के केन्द्र 'भूमा' का प्रतीक भू पर विद्यमान हुआ है। ईश्वर प्रतीक है उस आदि–सत्य का"। इस दिव्य–एवं गहन सत्य को प्रकाशित करने हेतु आध्यात्म पुरुष समर्थ सद्गुरु श्री लालजी सा. का आगमन हुआ। समय के गर्त में आज मनुष्य मनुष्यता को ही भूल गया है। भौतिक–शरीर की आवश्यकताओं में उलझा मनुष्य अपनी वास्तविक–प्रवृत्ति को ही भुला बैठा है। इतना ही नहीं मानव का मानव से क्या सम्बन्ध इतना भी उसे याद नहीं रह गया है। अथवा यूँ कहें कि आज सम्बन्ध की व्याख्या एवं सम्बन्ध का अर्थ ही समय की गर्त निगल गई है। भौतिक अंधकार की गहनता में आज हाथ को हाथ नहीं सुझाई दे रहा है क्योंकि वास्तविक–आध्यात्मिक–शिक्षा ही विलीन हो गई है। लोग अपने भगवान का सृजन भी आप ही करने लग

गये हैं। भक्ति को भूलकर नित्य नये व्रत, नई रीतियाँ एवं नवीन राहें निकाल ली हैं। साधना–तरीकों एवं योजनाओं की बन्दिशों में क़ैद हो गई है। तभी हमारी आदि–माँ अर्थात् रचना की शक्ति की पीड़ा दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी के अवतरण का कारण बन गई। इतना ही नहीं प्राणियों के दैविक–उत्थान के संकल्प के साथ ही अपनी परम–शक्ति पर स्वामित्व देकर दिव्य–विभूति बाबूजी को भेजा है कि चाहे जितना खर्च करो। कदाचित यह दिव्य–दृश्य समक्ष में पाने पर ही मेरी लेखनी में यह गीत स्वतः ही गुनगुना उठा था कि "लाला तेरे छौने का यह अद्‌भुत–कमाल है" मेरे गीत की इस प्रथम–पंक्ति के साथ ही दूसरी पंक्ति ने इस सत्य को उजागर भी कर दिया था कि "स्वामीजी बोले 'ये' तो भूमा का गोपाल है अर्थात् यह भूमा का अस्तित्व है। फिर कौन किससे पूछे 'हस्ती' कैसी है ये आई रे"– इस भेद के उभरने के बाद यह सत्य भी प्रत्यक्ष में आ गया है कि 'सत्य–स्वयं प्रकाशित होता है'। अब अपने श्री बाबूजी महाराज की दैविक– research अनुभूतियों को समेट कर रखने का यह रहस्य भी मेरे सामने आ गया है कि आख़िर इतने प्यार भरे–आदि से लेकर अनन्त–तक की दैविक–दशाओं की अनुभूति के साथ पुस्तक लिखते समय उनका दर्शन अथवा वह अनुभूति पुनः समक्ष में लाने के लिए ही यह दैविक–रहस्य छुपा हुआ था। वह इसीलिये कि ताकि उनकी इस दैविक–शिक्षा को अपनी अनुभूतियों द्वारा मैं अन्य अभ्यासियों में भी भक्ति एवं संकल्प की दृढ़ता के साथ उतार सकूँ। भला आप ही बतायें कि ऐसी सजीव–दैविक शिक्षा की रीति का स्पर्श या दर्शन धरा ने कभी भी पाया था? धरा तो स्वयं ही मौन है। दिव्य–अवतरण का दर्शन तो पृथ्वी ने अनेक बार पाया है परन्तु भूमा से उतरी दिव्य–विभूति के चरणों का स्पर्श तो इसने प्रथम बार ही पाया है।

इतना ही नहीं तभी तो प्राणी–मात्र के हित आज उन्होंने ईश्वर–प्राप्ति के बाद अन्तिम–सत्य के दर्शन का लक्ष्य दिया है। इसलिये उन्होंने अपनी दैविक– research की शिक्षा द्वारा मेरे में उतारी गई अनुभूतियों की शिक्षा को अपने संकल्प की शक्ति से सम्बद्ध करते हुये–सहज से मार्ग की शिक्षा प्रदान की है। क्या लिख पायेगी यह लेखनी उनकी सहज–मार्ग की दैविक–शिक्षा के विषय में? मैंने पाया है अनुभूतियों के स्तर को भक्ति की डोर का सम्बल देते हुये प्रारंभिक–स्तर से लेकर अंतिम–सत्य की ड्योढ़ी के स्पर्श तक के स्तर को 64 points का नाम या स्तर रूपी सोपानों को अपने दैविक–संकल्प में साधकर रक्खा है। वैसे तो अपनी अन्य पुस्तकों में भी मैंने इनका विवरण अनुभूतियों द्वारा दिया ही है किन्तु किन्हीं सोपानों की अनूठी एवं श्रेष्ठ–अनुभूतियों को सजीव एवं सशक्त रूप में उतार पाने के मेरे प्रयासों को मेरे बाबूजी हमेशा से ही सफल बनाते आये हैं। वे आज भी मेरे समक्ष बैठे हुये मेरे साथ हैं। यद्यपि हर स्तर को शिक्षा के रूप में चित्रों द्वारा भी मैंने समस्त के लिये सरलता से समझ पाने के लिये ही उतारने का प्रयास किया है। सफलता प्रदान करने का बीड़ा तो उनका दैविक–संकल्प है जो उनकी– research के रूप में प्रथम दिन से ही मेरी लेखनी में प्रवेश पाकर लेखन को यथार्थता का रूप देकर दैविक–शक्ति के आकर्षण से पूर्ण कर रहा है। भला देखें कि आत्मा का श्रोत यानी परमात्व तत्व का स्थान, उनके प्रागट्य के रूप में चित्रित Mind Region अर्थात् हिरण्यगर्भ (जो कि रचना की शक्ति के क्रियान्वित होने का स्थान) ही है। इस तथ्य की उज्ज्वलता अनुभूतियों में पाते हुये मैंने बाबूजी को लिखा था कि मुझे ऐसा लगता है सूर्य, चन्द्र, तारे एवं धरा, आकाश सब मैंने ही बनाये हैं जो आपके–संकल्प पर स्थित हैं।" तो आपने लिखा था कि "बिटिया आज मैं इतना खुश हूँ कि तुम मेरी

अनुभूतियाँ शिक्षा बन गई

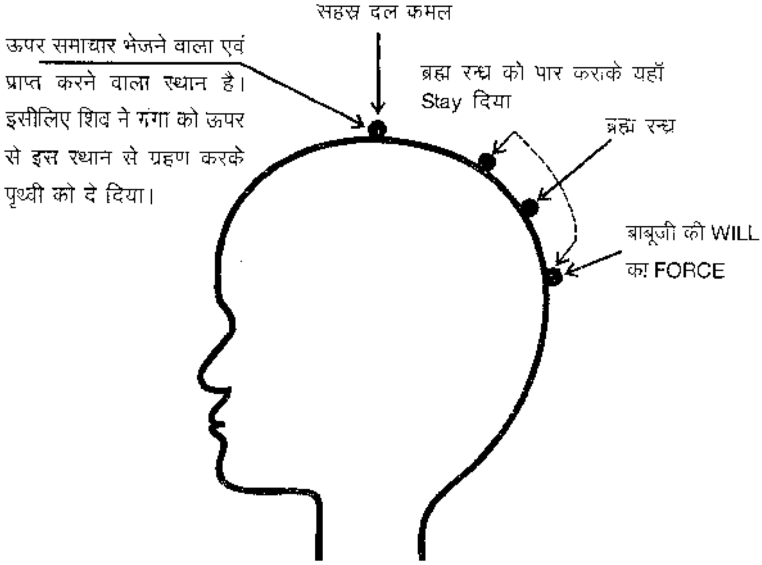

उपर्युक्त चित्र में सिर में जो मध्य का point दर्शाया है वह ब्रह्म–रन्ध्र का स्थान है। मध्य के point से पहले जो point दिया है वह श्री बाबूजी की Will-power के Force का point है जो अभ्यासी को ब्रह्म–रन्ध्र को पार कराने के निश्चय से स्थापित हो गया है। वे अपनी Divine Will-Power से ब्रह्म–रन्ध्र को पार कराके अपनी ही Divine-Will से अभ्यासी को उस पार स्थापित कर देते हैं जिससे वह उस स्थान से पुनः वापस न हो सके। इसप्रकार पहला point श्री बाबूजी की Will-force का है। दूसरा point ब्रह्म–रन्ध्र का है व तीसरा point उस पार की स्थापना का point है।

research का मोल तो मुझे भुला दे रही हो"। तभी उन्होंने यह भी लिखा था कि " 'हिरण्यगर्भ' की हालत पाकर तुम उसमें लय होकर ही मानो उस स्थान का हाल लिख रही हो या अपनी आत्मिक–दशा लिख रही हो। ऐसा तुम्हारी हालत की शुद्धता के कारण ही है कि हुबहू वही बात उतार दी है।" एक और भेद की बात है जो लिखे बिना मैं नहीं रहूँगी वह मेरे बाबूजी महाराज की दैविक-- research का बरदान है जो दैविक–शिक्षा के रूप में मैंने पाया है, वह यह है कि एक से दूसरे region तक की यात्रा के बीच का जो gap है वह भी उनकी research की गहनता के कारण के साथ ही शिक्षा भी दे रहा है। वह यह कि मैंने जब बाबूजी को अपना यह अनुभव लिखा था कि "ऐसा लगता है कि मानो आने वाली हालत मेरे सामने बार–बार अनुभव में आकर मुझे बताती है कि वह मेरी है और आने वाली है।" आज इसका उत्तर भी मेरे बाबूजी ने जो मेरे समक्ष स्पष्ट कर दिया है। वह वास्तव में उनकी शिक्षा के रूप में वन्दनीय है। जानते हैं क्यों? क्योंकि मानों उन्होंने शिक्षा के रूप में बताया है कि "तुम हर हालत की बारीकी का भी अनुभव कर रही हो। यह जो gap तुम्हें अनुभव होता था यह वास्तव में gap नहीं बल्कि आने वाली सूक्ष्म–दशा की गरिमा के सदृश है। वर्तमान दशा से आने वाली दशा सूक्ष्म होती है इसलिये उसका अनुभव भी सूक्ष्म होता है। तुम्हारे एहसास की मैं दाद देता हूँ जो आने वाली दशा का अंदाज़ भी पा जाती हो।" तभी तो मैंने पाया कि "आने वाली यह सूक्ष्म–दशा अपना अक्स डालकर मेरी दशा को अपने स्पर्श में डुबाकर अपना सा सूक्ष्म बनाकर क्रमशः मुझमें प्रवेश पाकर मेरी हालत बन जाती थी। यह है Nature से मिली–जुली उन दिव्य–विभूति के सहज–मार्ग साधना द्वारा पाई साधना का प्रसाद जो तब अनुभव के रूप में मुझे मिला था। अब शिक्षा के रूप में

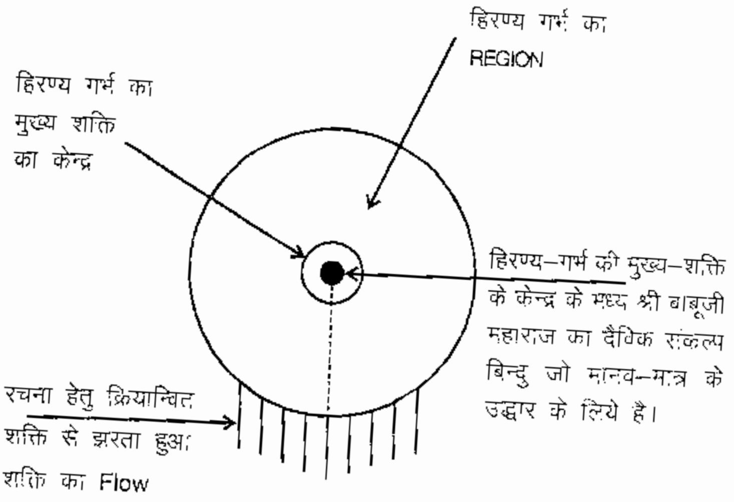

चतुर्थ Mind Region

भी उन्होंने मुझ में इसका प्रवेश दे दिया है। ताकि अपने अभ्यासी भाई–बहनों में सहज ही मैं इसे उतार सकूँ। इतना ही नहीं उन्होंने– अपनी दैविक–शक्ति का वरदान भी दिया है। वरदान स्वरूप उन्होंने मुझे लिखा था कि "तुम्हारे एहसास की मैं दाद देता हूँ जो आने वाली–दशा का अंदाज़ भी पा लेती हो। अभ्यासी भाइयों में इन दशाओं की शिक्षा से तुम्हारी अनुभूतियों ने तुम्हें भर दिया है– एवं हर दशा एवं स्थान की दिव्य–शक्ति भी तुम्हारे में भरपूर हो गई है। अब आप भी अनुभूतियों में पगें ताकि आपकी अनुभूतियाँ वास्तविक–शिक्षा का रूप पा जायें।

●

विभिन्न दैविक - रीजन्स

हृद-देश अथवा (Heart Region)

"प्रथम रीजन"

मैंने पाया कि हार्ट–रीज़न का विस्तार अधिक होने के कारण यहाँ की यात्रा में भी समय लगता है। कारण यह भी है कि पंच तत्त्वों का पिघलना और क्रमशः षट्–चक्रों का स्वतः खुलते जाना और उनकी शक्ति का अभ्यासी में सहज ही मिलते जाना समय लेता है। ऐसी सहज–साधना कदाचित मानव के हित समक्ष में नहीं आई है। सहज–मार्ग–साधना के नाम से सहज–शब्द का योग ही इसकी विशेषता है। जानते हैं क्यों? क्योंकि यह साधना क्रिया के बंधन से मुक्त होने के कारण हमें साधना में नहीं बाँधती है बल्कि हमारे लिए समस्त बंधन से मुक्ति दायिनी हो जाती है। श्रीबाबूजी महराज की इस सहज साधना का बोध मुझे अब मिला है जबकि मेरे बाबूजी ने साधना के आदि से लेकर अंत अर्थात् Ultimate तक की अनन्त यात्रा की पूर्णता अपनी इस नादान बिटिया में उतार कर यह सिद्ध कर दिया है कि उनका दैविक संकल्प कितना सशक्त एवं कितना सफल है। इतना ही नहीं मानों मानव मात्र के हित अपनी प्राणाहुति का प्रवाह हमारे हृदयों में देकर हमारे अंतर में उनकी दैविक संकल्प की शक्ति का साया पंच तत्त्वों का पिघलाना शुरू कर देता है। हम अभ्यासी तो मात्र इतनी ही साधना करते हैं कि उन्होंने बताया हृदय में ईश्वर का वास है, वह हमारा है इस सत्य के ध्यान को लागातार रूप में रखने की हम कोशिश करें। इतना ही नही प्यार की इस अपनाइत के साथ उसे ध्यान में रखें कि वह हमारा है हमें बहुत प्यार करता है। मैंने पाया है कि इस ध्यान से हृदय जितनी सामीप्यता Divine से अनुभव करता है उतनी ही तेजी से पंच–तत्त्व पिघलना

शुरू हो जाते हैं। एक बात मैंने यह भी पाई थी कि जितनी ही पिघलन हृदय अनुभव करता था उतना ही हृदय मानों फैलता जाता था। इसका ज्ञान मुझे अब हो रहा है कि इसका अर्थ है कि matter हमारे हृदय में संकीर्णता पैदा करता है, जिसका प्रभाव प्रथम हमारे विचारों पर पड़ता है सोच पर पड़ता है और फिर वह संकीर्णता हमारे व्यवहार में भी झलकने लगती है, मानों हृदय की महानता में सिमटाव आ जाता है। मुझे भली भाँति स्मरण है कि मैंने 'श्रीबाबूजी' को पत्र में अपनी यह हालत लिखी थी कि "लगता है कि मेरा हृदय ईश्वरीय–प्रकाश से कुछ इस तरह से प्रकाशित हो गया है कि मध्य में सदैव आपकी मौजूदगी का एहसास रहता है। परिणाम–स्वरूप वह मन को इतना अच्छा लगता है कि मैं पने के एहसास को मानों स्वयं बाहर ढकेलता रहता है। फलस्वरूप एक दिन शरीर का भान कुछ इस तरह से उनमें विलीन होने लगता है कि अपने होने की याद कभी आती ही नहीं। जब पंच–तत्त्वों का विकार धुल जाता है तो फिर भला माया कहाँ ठहरे और माया भी हमारे में से माइनस होने लग जाती है। अंतर की इस पावनता में डूबे हम क्रमशः उनमें ही रमना शुरू हो जाते हैं। ईश्वरीय–ध्यान में रहते हुये माया के बंधन कब पिघल कर साफ हो जाते हैं– हमें पता ही नही लगता है। हाँ जब मेरे श्रीबाबूजी ने पत्र में मुझे मुबारक कहते हुये लिखा था कि " आज मैं बहुत खुश हूँ जो लालाजी साहब की कृपा से तुम्हारी ऐसी शुद्ध हालत देखने को मिल रही है। पंच–तत्त्व से परे तो तुम तभी से हो चुकी हो जबसे तुम्हारी Forgetful-State की हालत शुरू हुई है। मुबारक इस बात की दे रहा हूँ कि बहुत शीघ्र तुम माया के मुख्य–पाँच circles से भी परे हो गई हो। सैकड़ों वर्षों की साधना एवं तपस्या द्वारा पाने वाली दशा को तुमने इतने शीघ्र प्राप्त कर लिया है। अब खुशी है कि ईश्वर तुम्हें लय–अवस्था की भी बरकत देंगे क्योंकि बिना लय–अवस्था के

हृद-देश *(Heart Region)*

प्रथम रीज़न

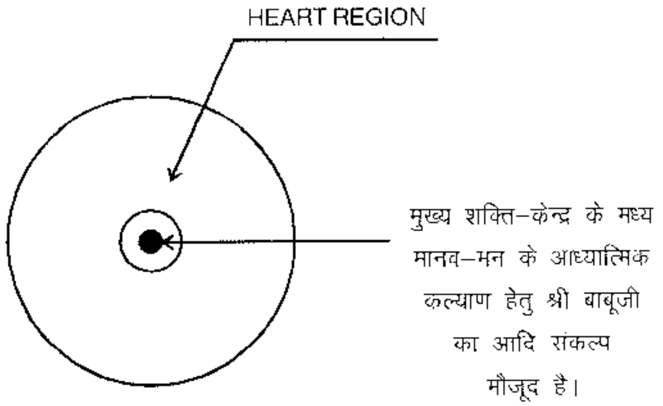

पाये 'अनन्त–यात्रा में प्रवेश पाना असंभव होता है।

अब इस भेद को भी मैं आज स्पष्ट करने जा रही हूँ कि पंच–तत्त्वों एवं माया के ठोस बंधनों के पिघल जाने पर हृदय की अपनी सीमित–सीमा भी पिघलने लगती है। तब ईश्वरीय–विराट–हृदय का दैविक–आकर्षण, हमें अपने में मिला लेता है। अब आप ही बतायें कि श्रीबाबूजी महाराज की Divine Personality का प्यार जो मानव–मात्र के हित है उसे अपनाये बिना पंच–तत्त्वों का पिघलना एवं माया के ठोस बंधनों से मुक्ति पाना बिल्कुल असंभव ही है। मुझे लगता है भक्तों ने भगवान की निकटता की अनुभूति मे पग कर ही साक्षात्कार पाने की पात्रता पायी होगी। आज हमारे लिए तो दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी मानों अंतिम–सत्य की अनन्त यात्रा का नेह–निमंत्रण स्वरूप ही बनकर हमें लिवाने आये हैं। फिर मैंने पाया था की ध्यान ही तन्मयता हमें ईश्वरीय–विराट में प्रवेश दे देती है। तबसे अर्थात् ईश्वरीय विराट्–हृदय में रहनी पा जाने से सूक्ष्म–शरीर के बंधन के साथ माया के सूक्ष्म–बंधन भी तेजी से लय होना शुरू हो जाते हैं। अब बतायें कि सहज–मार्ग–साधना में ईश्वर हमारे हृदय में विद्यमान है और हमारा है, बस इस दैविक–सम्बन्ध का योग एवं श्रीबाबूजी महाराज द्वारा हमारे हृदय में प्रवाहित–ईश्वरीय–धारा का प्रवाह साध्य की मौजूदगी से हमें इतनी शीघ्रता के साथ जोड़ने लगता है कि हम Divine में लय–अवस्था पा जाते हैं। इसका जिक्र आध्यात्मिक साहित्य में कहीं मिलता ही नहीं है वह हमारे लिए सम्भव हो जाता है और अभ्यासी की साधना की सफलता में चार चाँद लगा देता है। हमारी भक्ति का योग जब दिव्य–विभूति के Divine-work के संकल्प का योग पा जाता है तब हृद–देश की दैविक–यात्रा की पूर्णता का दिव्य–संदेश हमें मिल जाता है।

हिरण्य गर्भ (Mind Region)

द्वितीय रीजन

मैंने अपनी अन्य पुस्तकों में लिखा है कि कदाचित्–मानव अंतर में अपने Divine-work की पूर्णता में शीघ्रता देने के लिए ही मेरे श्रीबाबूजी मुझे दैविक–शिक्षा का पाठ समक्ष में चित्र रखकर सिखा रहे हैं। शिक्षा को सरलता प्रदान करने के साथ ही अपनी प्राणाहुति शक्ति द्वारा सशक्त बनाकर सहज–मार्ग को सरलता वा एवं सहजता के शिखर पर ले जा रहे हैं। उनकी अतुलित कृपा मुझमे उनकी इच्छा की पूर्णता हेतु सामर्थ्य भी भरती जा रही है। इस सदंर्भ में अपने अभ्यास–काल की एक बात लिख रही हूँ। मैंने जब पत्र में अपनी दशा के बारे में उन्हें लिखा था कि "न जाने क्यों मैं आगे बढ़ना चाहती हूँ लेकिन लगता है कोई शक्ति मुझे पीछे ढकेल देती है। मेरे बाबूजी, ऐसा तो कभी नही हुआ, मेरी साधना में क्या कमी हो गई है?" उत्तर था "मैं मुश्किल में पड़ गया हूँ कि तुम्हें हिरण्य गर्भ अथवा Mind Region मैं कैसे प्रवेश दूँ। यहाँ Creation या रचना की रचनात्मक शक्ति (Creative-power) का flow नीचे की ओर इतना तेज होता है कि नीचे से उस तेज को पार करके उसमें प्रवेश पाना असंभव होता है। यदि मुझे हर Region के हर मुख्य Points की Research के भेद को न उघारना होता तब तो भक्ति तुम्हें ईश्वर के साक्षात्कार तक ले जाती किन्तु मेरी research में हर केन्द्र की दशा की अनुभूति एवं शक्ति फैलाव एवं दूसरों को ले जाने की क्षमता भी तुम्हारे अंदाज में आती जाये इसके लिये ही मैंने तुम्हें चुना है। तुम अनुभव भी अच्छी तरह से मुझे स्पष्ट रूप में लिख रही हो इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ।" उन्होने मेरी शिक्षा के लिये मेरे समक्ष में जो चित्र

रखा है वह समस्त के लिये भी उज्ज्वल हो जायेगा। उन्होंने तो अपनी दैविक–इच्छा–शक्ति द्वारा उस शक्ति के धारा के विरूद्ध मुझे उसमें प्रवेश दिया था। किन्तु हमारी Training या शिक्षा के हेतु जो सहजता का चित्र मेरे समक्ष में रखा है वह अद्‌भुत है।

पुस्तक के अन्तिम अध्याय में जो चित्र के सहित लेखन है वह हिरण्य गर्भ या Mind-Region में प्रवेश देने के हेतु है। फिर यात्रा के बाद इस Region से अभ्यासी को पार कराने के लिये मेरे श्रीबाबूजी की अलौकिक शिक्षा है। इस महत् रीजन को पार करने की दैविक–शिक्षा जो अब बाबू जी ने चित्र द्वारा मुझे समझाई है :

मैंने पाया है कि प्रत्येक रीजन अथवा केन्द्र के शक्ति के केन्द्र–बिन्दु में तो भूमा की शक्ति मौजूद है। किन्तु इस केन्द्र के मध्य श्री बाबूजी महाराज का दैविक संकल्प जो मानव मात्र को ईश्वर–प्राप्ति के हेतु है वह हर केन्द्र की पूर्ण–शक्ति के मध्य मौजूद है। यदि अभ्यासी को केन्द्र से झरती हुई दैविक–शक्ति के उस स्रोत में योग देदे तो इस रीजन में प्रवेश–प्राप्ति की सरलता के साथ ही यहाँ की यात्रा भी शुरू हो जाती है। हिरण्य गर्भ में उनकी कृपा के बिना प्रवेश पाकर यात्रा कर पाना नितान्त दुर्लभ है। यात्रा का भी अर्थ जो अब मैं समझ सकी हूँ वह यही है कि इस रीजन की यात्रा में दशा की अनुभूति के साथ यहाँ की शक्ति भी अभ्यासी को मिलती जाती है। सहज–मार्ग–साधना के अतिरिक्त भी पहले भक्तों ने हर रीजन Cross करके ही ईश्वर का साक्षात्कार सदैव पाया है। किन्तु श्रीबाबूजी महाराज ने अपनी दिव्य–खोज Divine Research द्वारा हर रीजन की शक्ति पर स्वामित्त्व भी हमें मिलता रहे ऐसी आध्यात्मिक शिक्षा भी हमारे समक्ष रकखी है ताकि आगे आने वाले अभ्यासी जब भक्ति में लीन हो जायेंगे तो हर देश की शक्ति पर स्वामित्त्व के कारण हम आगे आने वाले

हिरण्य-गर्भ *(Mind Region)*

द्वितीय रीजन

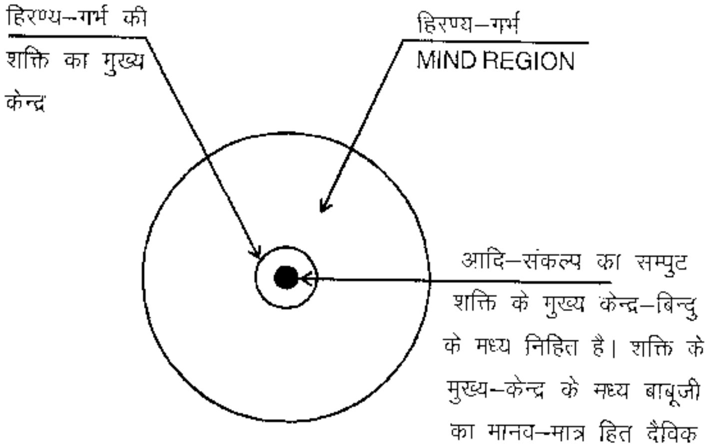

Region में उन्हें सहज ही प्रवेश दे सकेंगे तब यहाँ की power स्वतः ही उन्हें अपनी कशिश में समेट लेगी और यात्रा भी शुरू हो जायेगी। हम बाबूजी की कृपा एवं शक्ति का सहारा पाते हुये, एवं दूसरों को आगे की दैविक–दशाओं में भिगोते हुये आगे बढ़ते जायेंगे। एक बात आज मैं स्पष्ट कर पाने के लिये स्वतंत्र हूँ कि सहज–मार्ग की साधना तो ईश्वर के साक्षात्कार से योग पाये हुये है किन्तु इसके आगे अन्तिम–सत्य तक का सहज मार्ग श्री बाबूजी महाराज की दैविक Research का ही वरदान मानव–मात्र के लिये है। जानते हैं क्यों यह इसलिये कि मानव मात्र में ईश्वर–प्राप्ति की चाह जाग उठे और उन्हें अनन्त की यात्रा में सफलता मिले। ऐसे दिव्य–मार्ग की खोज व ऐसे दिव्य–लक्ष्य की प्राप्ति के संकल्प को उनकी ही दिव्य–इच्छा शक्ति ने गति प्रदान की है। मैं जो दैविक–शिक्षा बाबूजी से पा रही हूँ उसमें मैंने यही पाया है कि यदि कोई भी अभ्यासी उनके ही दैविक–संकल्प की धारा में Remembrance का योग दे दें तो फिर ईश्वरीय देश में प्रवेश पाना सरल हो जाता है।

ईश्वरीय देश-तृतीय रीजन

आदि शक्ति के केन्द्र में रचना के हेतु आदि के स्पन्दन के फलस्वरूप रचना की उत्पत्ति की आवश्यक–शक्ति का स्रोत जहाँ ठहरा वह ईश्वरीय–देश है। जहाँ से रचना की शक्ति क्रियान्वित हुई वह ईश्वर है। तभी तो हमेशा से ही भक्त को साक्षात्कार का ही दैविक–लक्ष्य बताया गया है।

आज मानव–मात्र में ईश्वर–प्राप्ति की चाह को जागृत कर देने हेतु समर्थ–सद्गुरू लालाजी सा० की दैविक–प्रार्थना द्वारा ही अंतिम–सत्य अथवा आदि–शक्ति पर प्रभुत्त्व लिये हुये दिव्य विभूति श्रीबाबूजी महाराज का दिव्य–अवतरण पृथ्वी पर हुआ है। अपने दिव्य–संकल्प एवं शक्ति के फलस्वरूप सहज–मार्ग साधना द्वारा ईश्वरीय देश के प्रवेश–द्वार को उन्मुक्त करके मानों अनन्त में प्रवेश के निमंत्रण के रूप में हमारे समक्ष वे हमेशा मौजूद हैं। युग को ईश्वर–प्राप्ति की दैविक–चाह से भरने के बाद युग परिवर्तन के फलस्वरूप इसे सत्–युग अर्थात् ईश्वरीय युग की संज्ञा के प्रदान होने तक 'वे' सदैव हमारे समक्ष दर्शन में मौजूद हैं और रहेंगे। उनके दैविक–संकल्प की पूर्णता के साथ युग उनकी ही शरणागत् हुआ उनकी ही दिव्य–छवि के सौदर्य के श्रृंगार से सजा रहेगा। उनके ही दैविक–सौंदर्य में नहाये युग का कण–कण उन्हें पुकारता हुआ प्राणियों को 'उनकी' ही दैविक–शरण प्रदान करता रहेगा। जानते हैं इसका भेद? वास्तव में रचना के स्थान से अर्थात् भूमा के देश से अवतरित दिव्य–विभूति आदि–संकल्प की परम शक्ति से ही प्राणी मात्र को दिव्य श्रृंगार से सजाने आई है।

आध्यात्मिक दैविक–शिक्षा का यह भेद आज मेरे समक्ष स्पष्ट हो गया है कि अभ्यासी में साक्षात्कार पाने की चाह या

भक्ति की दृढ़ता जब अंतर में संकल्प बन जाती है, तब से दिव्य अनन्त–यात्रा के सोपान मानों अपना भेद अथवा दशा को स्वतः खोलते जाते हैं। अपने समक्ष फैले हुये सोपान अपनी दशाओं से हम अभ्यासियों के हृदयों को सजाते चलते हैं। पश्चात अनन्त–यात्रा का सहज मार्ग हमारे लिये स्पष्ट हो जाता है एवं वरदान स्वरूप दशाओं की अनुभूति भी हमारे अंतर में लय हो जाती है।

कदाचित! समस्त की आध्यात्मिक सेवा की सहूलियत हेतु बाबूजी की शिक्षा मेरे समक्ष चित्र के रूप में आती जा रही है। वास्तव में यह शिक्षा ही प्राणी मात्र के लिये दिव्य–वरदान है।

दिव्य–ईश्वरीय–देश का एक रहस्य जो श्रीबाबूजी ने मेरे समक्ष मेरी शिक्षा के लिये रखा था वह अपने में अलौकिक एवं अनूठा है। ईश्वरीय–शक्ति रचना की परम–शक्ति के भंडारन स्वरूप है इसलिये मैनें पाया कि यहा की दिव्य–मर्यादा के अनुरूप हम यहाँ इस परम शक्ति रूप ईश्वरीय केन्द्र में, श्रीबाबूजी के दैविक संकल्प का बिन्दु नहीं बल्कि उन्हें ही मौजूद पाते हैं। जानते हैं क्यों? क्योंकि आदि–शक्ति के स्त्रोत से अवतरित दैविक– मर्यादा– पुरूषोत्तम दिव्य–विभूति श्रीबाबूजी की ही कृपा एवं शिक्षा का यह कार्य है। कारण है कि रचना हेतु इस अनूठे, दिव्य–शक्ति स्त्रोत में मानव प्रवेश नहीं पा सकता है, हाँ साक्षात्कार तो भक्तों ने पाया है और पा सकते हैं किन्तु ईश्वरीय–शक्ति से परे Ultimate या आदि–शक्ति के अनुपम देश की गरिमामयी दिव्य–यात्रा का द्वार अभ्यासियों के लिये वहाँ से अवतरित अनुपम दिव्य–विभूति के अवतरण द्वारा ही सम्भव हुआ है। आध्यात्मिक क्षेत्र को अनुपम वरदान रूप में ही ऐसा दिव्य–सौभाग्य मिला है। इस कारण ईश्वरीय देश की अनुपम–शक्ति में हम प्राणियों को भी प्रवेश देना मात्र उनकी

ईश्वरीय-देश *(Godly Region)*

तृतीय रीजन

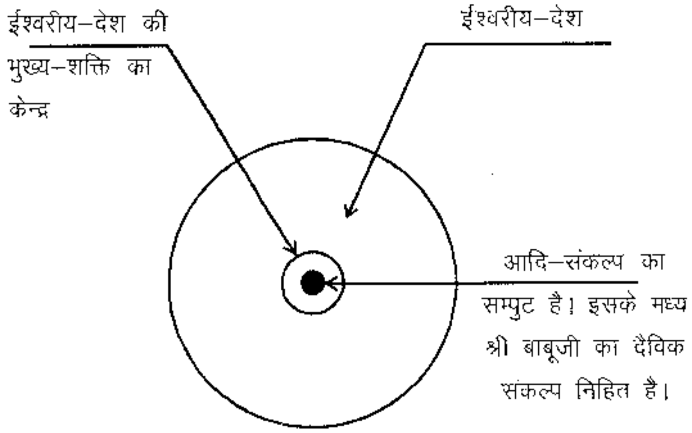

कृपा से एवं उनमें लय–अवस्था प्राप्त होने पर ही सम्भव हो पाया है। मैने पाया था कि भक्ति की तल्लीनता में डूबे अभ्यासी की जब उनमें लय–अवस्था हो जाती है तो उसकी दिव्यता की तपिश में उसका मैं अर्थात अहं भाव ऐसा पिघल जाता है कि दिव्यता उसका स्वरूप हो जाता है। ऐसी दिव्य–दशा में डूबे हुये जब मैने अपने बाबूजी द्वारा ईश्वरीय दर्शन 'उनकी' ही दिव्य–दृष्टि में समाये हुये पाया तो विभोर हो गयी थी तभी मैने पाया था कि पलक–मारते ही मानो श्रीबाबूजी ने मुझे अपने में समाकर या लय करके प्रथम तो ईश्वरीय–शक्ति को ही सौंप दिया था। फिर उस परम–शक्ति में स्नान देकर नव–शिशु के समान गोद मे लिया तो मैने पाया था कि उनके द्वारा लिखित अहं के 16 circles उस शक्ति में ही विलीन हो चुके थे। पश्चात उन्होंने नव–शिशु के रूप में मानो अपनी बिटिया को दैविक–सत्य–पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था। कदाचित आज उनके द्वारा ही पकड़ाई हुई उनकी इस लेखनी ने उनकी खोज के ईश्वरीय रीजन का यह दिव्य–रहस्य भी स्पष्ट कर दिया है कि वे मर्यादा–पुरूषोत्तम हैं। प्रेम की इस अनुपम–मर्यादा का दर्शन पाकर आज इस लेखन के समय मैं कृतकृत्य हो गई हूँ कि समक्ष में वे हैं जिनका साक्षात्कार पाना मानव–धर्म है अर्थात ईश्वरीय–दर्शन। वे दिव्य–विभूति जो मानव–मात्र में ईश्वर–प्राप्ति की चाह जगाने के साथ ही अपनी दिव्य प्राणाहुति को हृदय में प्रवाह देते हुये समस्त को योग्य–पात्र भी बनाते जाते हैं।

सेंटर-रीजन (Ultimate) के वैभव का केन्द्र

चतुर्थ-रीजन

अपने श्रीबाबूजी की पूर्ण-रिसर्च के फलस्वरूप ही समस्त की आध्यात्मिक उन्नति की शिक्षा हेतु मैंने इस दैविक-तथ्य की उज्ज्वलता को पाया है। मैने पाया है कि श्रीबाबूजी के दिव्य-अवतरण का दिव्य संकल्प हर केन्द्र की पूर्ण शक्ति के मुख्य-केन्द्र बिन्दु में स्थित है। आज मैं समक्ष मैं देख पा रही हूँ कि अपने आदि-संकल्प से ही मेरे अभ्यासी-हृदय को उन्होंने अपनी दैविक-इच्छा-शक्ति का सम्बल देकर, योग दिया था तभी उस केन्द्र की यात्रा सम्भव हो सकी थी। अभ्यास-काल में मुझे यह कुछ पता ही नहीं था लेकिन आज जब वे परम प्रिय इस अलौकिक-भेद को समस्त के हित उज्ज्वल करना चाहते हैं तभी यह मेरे लिये सम्भव हो गया है। इतना ही नहीं समस्त के लिये हम उनमें लय होकर कैसे काम करें ऐसी शिक्षा भी प्रदान कर रहें हैं। नन्हें बालकों की शिक्षा की भाँति सामने चित्र दिखला कर ही हमें सिखा रहें हैं। आज अपने होश को काबू में रखे हुये मैं अपने बाबूजी की कृपा पर बलिहार हूँ कि उनकी दिव्य छवि के अटूट-प्यार की कसौटी पर कस कर खरा उतारने के लिये उन्होंने अपनी इस बिटिया को अपने दैविक-हृदय में रहनी का स्थान दिया है।

CENTRE REGION

ULTIMATE का वैभव केन्द्र

चतुर्थ रीजन

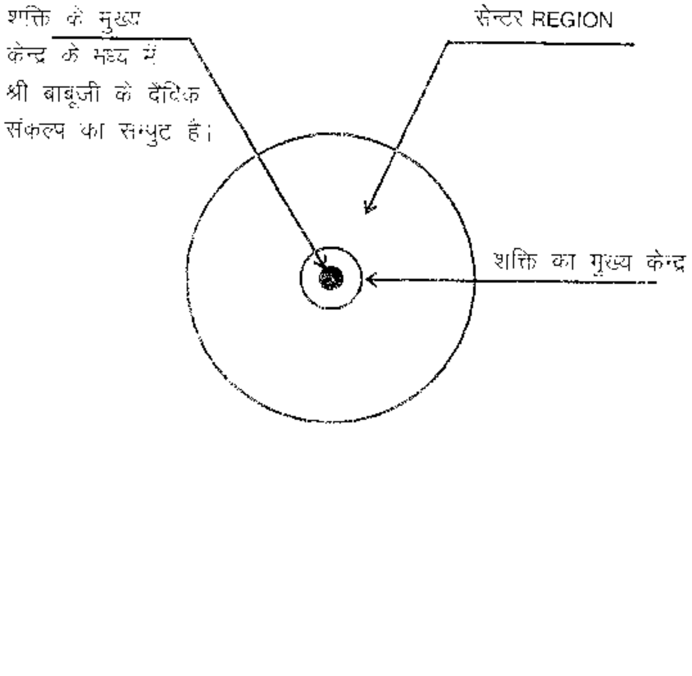

आदि-शक्ति (Ultimate) का अनन्त रीजन

पांचवाँ-रीजन

आदि-शक्ति का मुख्य केन्द्र भूमा (Ultimate)

आज मेरे अनुभव ने इस दैविक–भेद को भी उज्ज्वल कर दिया है कि Creation के लिये परम–शक्ति के मध्य रचना का संकल्प कारण रूप में मौजूद हुआ। मानव के अन्दर वह मूल–कारण, कारण–शरीर में पूर्ण–शक्ति के मध्य आत्मा रूप में समाहित हुआ।

मेरे श्रीबाबूजी की पूर्ण आध्यात्मिक–रिसर्च होने के कारण मेरे अनुभव की दृष्टि ने इसकी भी प्रत्यक्षता मुझे प्रदान कर दी है कि रचना का वह आदि–संकल्प, आदि–शक्ति से नीचे आती हुई शक्ति के हर Circle या केन्द्र में उस रीजन के Circle के मध्य स्थित हुआ। और अब! मै पा रही हूँ कि वह आदि संकल्प श्रीबाबूजी के कार्य का दैविक संकल्प हो गया है।

●

पंचम रीजन

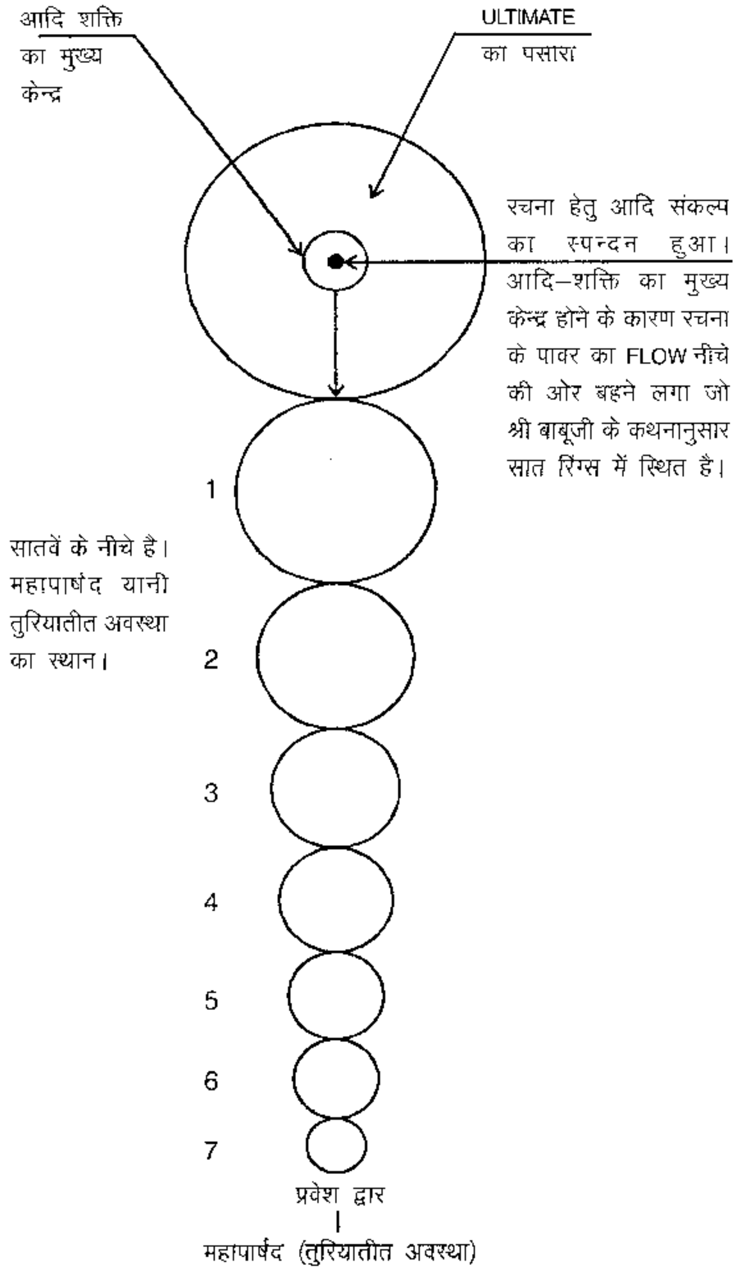
आदि शक्ति का मुख्य केन्द्र
ULTIMATE का पसारा
रचना हेतु आदि संकल्प का स्पन्दन हुआ। आदि–शक्ति का मुख्य केन्द्र होने के कारण रचना के पावर का FLOW नीचे की ओर बहने लगा जो श्री बाबूजी के कथनानुसार सात रिंग्स में स्थित है।
1
2
3
4
5
6
7
सातवें के नीचे है। महापार्षद यानी तुरियातीत अवस्था का स्थान।
प्रवेश द्वार
महापार्षद (तुरियातीत अवस्था)

"अनमोल दैविक रत्न"

कहते हैं कि धरती रत्न–गर्भा है– अर्थात् समस्त अच्छाइयों का स्रोत है। कदाचित यही कारण है कि यह ऋषि, मुनि एवं संतों की जननी है। किन्तु समय की गति जब करवट लेती है तब ही युग बदल जाता है। प्रश्न यह है कि समय की गति कब और क्यों करवट बदलती है? जब से ईश्वरीय–सामीप्यता के आभास की छाया के स्पर्श एवं आनन्द से मनुष्य–मस्तिष्क वंचित हो जाता है। तबसे वह अपने ही बनाये सोच में उलझे रहने के कारण स्वतः ईश्वरीय–सोच से परहेज करने लगता है। ऐसे परहेज़ के प्राकृतिक–कारण होते हुए भी एक कारण है अपने सोच से लगाव हो जाने का। अपने सोच का लगाव ही भौतिक–अहं के भाव अर्थात् अपने होने के भाव को जन्म देता है। जो जन्म ले लेता है उसका बढ़ते जाना स्वाभाविक होता है एक दिन! अपने होने का भाव जब सीमित होकर ठोस हो जाता है तो अहं का रूप ले लेता है। अब प्रश्न यह हो सकता है कि ऐसा क्यों और कब होता है? सो सुनें! समय जब Divine-Nature से दूर होने लगता है तो इसकी गति में मोड़ आ जाता है। श्री बाबू जी महाराज ने कहा है कि समय की गति जब Divine-power के आधार से वंचित होने लगती है तो इसकी गति सीधी न रहने के कारण zig-zag अर्थात् टेढ़ी–मेढ़ी हो जाती है। जब और जहाँ इस मोड़–तोड़ का मार्ग बन जाने के कारण गति–अवरोध का समय आ जाता है तो मनुष्य अपनी ही आकृति एवं प्रकृति दोनों को ही भूल जाता है। संसार भी ईश्वरीय–सम्पर्क की चर्चा से वंचित होकर अन्य चर्चाओं से चर्चित हो जाता है। लोग अपने मन के खेल में ही उलझने लग जाते हैं। मन के खेल का फैलाव या स्थान वाह्य हो जाता है। इसलिये क्रमशः रहनी बहिर्मुखी होने

लगती है– ईश्वरीय–प्रकाश में पलने वाला मन सूरज एवं चन्द्र के वाह्य प्रकाश में पलने लगता है। ईश्वरीय–स्पर्श के आनन्द को भूल ही जाता है, अन्ततः फिर ईश्वर को ही भूल जाता है। किन्तु! प्रकृति का विधान है कि तोड़–मोड़ एवं ठोसता की एक सीमा होती है। उस सीमा के आते ही प्रकृति में हलचल प्रारंभ हो जाती है। इस हलचल की ख़बर ऋषि, मुनियों के हृदय को जब स्पर्श करने लगती है तभी उनका मुख ईश्वर की ओर मुड़ जाता है एवं हृदय प्रार्थनामय होकर उनकी ओर निहारने लगता है। किन्तु यह निर्णय प्रकृति का होता है कि समय को सँवारने हेतु कैसी शक्ति की आवश्यकता होती है उसके अनुसार ही दैविक अवतरण धरा पर उतरते हैं। किन्तु आज मात्र समय को सँवारना ही नहीं है बल्कि युग की करवट में युग की व्यथा भी थी इसीलिये– युग–परिवर्तन हेतु समर्थ सद्‌गुरु लालाजी सा. (फतेहगढ़, यू.पी.) को 7 महीने की अपनी प्रार्थना द्वारा अन्तिम–सत्य (Ultimate) की ड्योढ़ी में प्रवेश पाकर, उस अनन्त आदि शक्ति के दिव्य–स्रोत में स्पन्दन देने की आवश्यकता हुई। जानते हैं क्यों? क्योंकि यह प्रकृति की नहीं, बल्कि दैविक–स्रोत में फैली दैवी–प्रकृति की ज़रूरत भरा आदेश था। अब आप समझ गये होंगे कि "युग आप दैविक–रत्न के रूप में दिव्य–विभूति श्री बाबू जी को पाकर अनमोल हो गया है। ऐसे दिव्य–अनमोल–रत्न ने ही मानव–उद्धार–हेतु आध्यात्मिक–क्षेत्र में दिव्य–साधना मय सहज–मार्ग" को उतारा है। साधना का प्राण है ध्यान अर्थात् Divine के ध्यान में तन्मय हो जाना। दैविक–सहायक रूप में मानव–हृदय में श्री बाबू जी महाराज द्वारा प्रवाहित– प्राणाहुति– शक्ति की ईश्वरीय–धारा के प्रवाह को निरंतर पाते रहना है। उनके Divine संकल्प में समाया हुआ प्राणी–मात्र के प्रति उनका ध्यान है। इतना ही नहीं प्राणी–मात्र को निहारती उनकी प्यार में डूबी

दैविक : दृष्टि मानो बहुधा हमें दैविक–प्यार के स्रोत में नहलाती रहती है– जैसे जननी बालक को साफ़ रखने के लिए स्नान कराती है वैसे ही उनकी दैविक–दृष्टि हमारे कुल अंतःकरण को विशुद्ध बनाने के लिए अपने दैविक–प्यार में स्नान कराती है और तब आध्यात्मिक–क्षेत्र में हमारी आत्मिक उन्नति की यात्रा आरंभ हो पाती है। इस विषय में मैं यह लिखे बिना नहीं रह सकती हूँ कि दिव्य–विभूति के अवतरण ने ही प्रथम बार युग को दैविक–रत्न की संज्ञा से सौभाग्यशाली बनाया है। साधना में आदि से लेकर अनन्त–यात्रा तक के अनुभव–रत्न को पाकर युग के हृदय को, अपनी दैविक research की खोज द्वारा दैविक– गतियों के रत्न से भर दिया है। धरा का परम–सौभाग्य यह है कि इस पर विचरते प्राणियों के हृदयों को इन दैविक–गतियों के रत्न का अँनजाना स्पर्श, उन्हें दिव्यता के सौन्दर्य से सदैव सजाता रहेगा। उनकी दिव्य– research ने ही धरा को ऐसा दैविक–सौभाग्य दिया है एवं युग को आध्यात्म–युग का कमाल दिया है। आज प्रकृति, दैविक प्रकृति का यह दैविक–वरदान पाकर थिरक उठी है। ऐसा लगता है कि चारों–दिशायें दैविक– चरणों का स्पर्श पाकर झूम उठी हैं।

यह दैविक–स्पर्श तो युग ने पाया ही है, और धरा ने भी हृदय पर उनके चरण–चिन्हों का सौभाग्य प्राप्त किया है पर धरा के प्राणियों ने तो उनकी कृपा से साक्षात्कार से लेकर अनन्त–यात्रा तक का दैविक–योग पाया है। इतना ही नहीं दिव्य–देश (Brighter World) के परमानन्द में डूबी हस्तियों ने प्रथम बार उनके दिव्या गमन की सुगधित दिव्य–अनुभूति पाकर अपने दिव्यानन्द को भी तिलांजलि देकर अपनी सेवाओं को उनके समर्पित किया है। मैंने यह भी पाया है कि इसका मुख्य कारण यह भी है कि वे उनके दिव्य–प्यार को जी भरकर निहार सकें। यह तो इस दिव्य–घरी

की दैविक–चर्चा की बात है। इतना ही नहीं उनके नूर से तेजस्वी हुआ उनका कुल सहज–मार्ग आज मानो धरा को भूमा अर्थात् आदि–शक्ति से योग देती हुई नसैनी की भाँति हमें सहायता प्रदान कर रहा है। मैं देख रही हूँ कि हमारे श्री बाबू जी ने आदि से लेकर अंत तक ले जाने के लिए अपनी दिव्य–खोज द्वारा, श्रेष्ठ–दशाओं की अनुभूतियों में संजोकर कुल चौंसठ points रूपी सीढ़ियों की सरलता भी प्रदान की है। प्रत्येक स्तर पर मैंने उनके साथ होने का आभास पाया है। जिसने सदैव मुझे आगे आने वाले क्षेत्र की श्रेष्ठ–दशा की दैविक–चेतना प्रदान की है जिससे उनकी ही अपेक्षानुसार मैं अपने पत्रों द्वारा उन्हें सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशा की अनुभूति का विवरण दे पाने में उनकी इच्छा द्वारा ही सफल रही हूँ। कितने अनमोल आध्यात्मिक दैविक–रत्नों से सजाकर उन्होंने आज युग को भी अनमोल बना दिया है। जीवन में ही साधनाकाल में मेरे समक्ष (Brighter World) की झलक देकर मानो उन्होंने अपनी दिव्य–खोज के तेज को भी समस्त के समक्ष प्रकट कर दिया है। वास्तव में मैं देख रही हूँ वह दिव्य–दृश्य, जिसका अवलोकन उनके द्वारा प्रदान की हुई दिव्य–दृष्टि द्वारा ही पाना आज मेरे लिये सम्भव हो पाया है। वास्तविक तथ्य तो देखें कि यद्यपि लेखनी को आँख नहीं है और लेखन को ताब नहीं है तो मैंने पाया, कि लेखन को समस्त के हित उज्ज्वल कर पाने का सामन्जस्य उन्होंने ही प्रदान किया है। यही कारण है कि मैंने पाया कि उनके चरणों में नत–मस्तक होकर ही मानों लेखन का दैविक–वरदान पाकर लेखिनी के साथ लेखन के मस्तक को उन्होंने सदैव के लिये ऊँचा कर दिया है। इतना ही नहीं आदि से लेकर अनन्त तक की दिव्य– research की पूर्णता हेतु, मानव–हित दिव्य–गतियों को अनुभव–गम्यता का पावन–श्रृंगार देकर आज धरा को दैविक अनमोल–रत्न–गर्भा का

गौरव प्रदान किया है। फलस्वरूप यह पृथ्वी दैविक–सौन्दर्य को पाकर कदाचित् प्रथम बार ही पूर्णता को प्राप्त हो पाई है। उन्नति के हर पड़ाव पर हर केन्द्र के मुख्य–द्वार पर सजग–प्रहरी की भाँति उन्होंने मुझे अपने साथ होने का आभास दिया ताकि बिटिया अकेलेपन से ऊब न जाये। इसलिये कि श्री बाबू जी का कथन है कि 'अंतिम–सत्य की हालत यूँ कह लो कि 'संग–बे–नमक' अर्थात् पत्थर में नमक का आभास तो होता है लेकिन स्वाद नहीं''। मैंने पाया कि उनके साथ होने के आभास ने इस कमी को मुझसे दूर ही रक्खा है। अब आप ही बतायें कि इसे सहज–मार्ग–साधना का अनमोल रत्न कहूँ अथवा समर्थ सद्गुरू लालाजी सा० द्वारा प्रदान की हुई दैविक विभूति को ही अनमोल दैविक रत्न कहूँ। मेरी लेखिनी का संकेत तो दोनों के ही लिए है। अथवा यूँ कहूँ कि भूमा के प्रतीक स्वरूप अद्भुत–रत्न हैं बाबू जी, एवं बाबू जी के दैविक–अवतरण द्वारा उतारा गया 'सहज–मार्ग' सिद्धि–पक्ष के हित अद्भुत–साधना–रत्न है।

वास्तव में तो सहज–मार्ग की साँची परिभाषा दिव्य–विभूति का दिव्य प्रसाद है। फलस्वरूप आज विश्व दैविक–सहज–मार्ग की गोद में है। सहज–मार्ग–साधना, दिव्य–विभूति के ध्यान में समाई हुई, उनकी प्राणाहुति से नहाई हुई प्राणीमात्र के हित ईश्वर को समर्पित–साधना है। आप देखें कि ईश्वरीय सामीप्यता में लिपटी हुई इस साधना का प्रथम अंग है कि यह ध्यान रक्खें कि ईश्वर हृदय में मौजूद है। सतत्–स्मरण द्वारा हृदय में इस ध्यान को बारम्बार कुरेदें तो दैविक सामीप्यता की feeling शीघ्र ही अभ्यासी को अनुभव में आने लगती है क्योंकि प्राणीमात्र का वास उनके ध्यान में ही हैं। यही कारण है कि बहुत शीघ्र हमारे अपने होने का भाव अंतर्धान होने लगता है। एक बात और है कि माया–रूपी अंतर्धान में खुद प्राणी अपने को छुपा लेता है, अपने

को, पुनः वापस ले आता है। किन्तु सहज–मार्ग साधना में पाई अंतर्ध्यान की अवस्था में हमें दैविक–सामीप्यता का आनन्द अपना स्पर्श देकर हमारे ध्यान को उस ओर आकर्षित रखने लगता है। फिर भौतिक–तत्त्वों के पिघलते जाने के फल–स्वरूप दैविक–ध्यान द्वारा अपने में 'उनके' होने की प्रतीति ऐसी मिलने लगती है कि अपने होने का भाव भी हमारा स्पर्श नहीं कर पाता है और हम अंतर के ध्यान में सदा के लिए अंतर्धान हो जाते हैं। फिर आगे सहज मार्ग साधना का दूसरा अंग सफ़ाई है जिसके बारे में यह लिखना नितान्त आवश्यक है कि दैविक ध्यान का आकर्षण कुछ समय बाद ही सफ़ाई की क्रिया को करने की याद ही भुला देता है। क्योंकि उनकी दैविक–समीप्यता के आभास में क्रिया का कोई स्थान ही नहीं रह जाता है। ऐसे जैसे साफ जगह में झाड़ू लगाने का ध्यान ही नहीं आता है। अब सहज–मार्ग–साधना का तीसरा और अंतिम अंग है प्रार्थना–जिसका प्राण है समर्पण। इधर सहज–मार्ग में तो हम भूलने लगते हैं लेकिन उनकी शरणागत् का भाव बहुत शीघ्र हमारे में उतर आता है। सहज–मार्ग के यह अनमोल तीनों रत्नों के श्रृंगार से हमारा अनुभव सज जाता है। सहज–मार्ग साधना के दैविक–सौन्दर्य से हम ऐसे सजने लगते हैं कि समर्पण का यह भाव मानो अब आत्म–निवेदन की प्रिय दशा के रूप में हमारे अनुभव को डुबोये रखने लगता है। एक और गौहर सहज–मार्ग साधना का लिखना बहुत जरूरी है कि साधना के इन तीनों अंग की वास्तविक–दशा जब हमारे में प्रवेश पाकर दैनिक–रहनी में स्वतः सँवर जाती है, तबसे साधना तो यों सम्पन्न हो जाती है कि अपने बाबू जी की मौजूदगी अपने में सदैव पाते रहने से हम मगन रहने लगते हैं। अब हमारे समक्ष उज्ज्वल होता है साँचा सहज मार्ग, जो सत्य–पद से योग पाये सहज–ईश्वरीय धारा में डूबा हुआ है। ऐसी दैविक–अनुभूति पाने

पर ही बाबू जी की दैविक research के सहज–मार्ग रूपी अनमोल दैविक–रत्न की समक्षता हमें प्राप्त होती है। एक दिन अपने श्री बाबू जी की कृपा से मैंने अनुभव में पाया था कि इस सहज–धारा में दैविक–सहज–गति ही समाई हुई है। हर दैविक–क्षेत्र एवं हर दशायें एक से एक कुछ इस तरह से अनुभव में आती जाती हैं मानो इन्हें किसी ने एक के बाद एक अनमोल–रत्न की लड़ी में पिरोकर हमारे लिये रक्खा हो। तभी तो मैं अपने बाबू जी की दैविक– research का वास्तविक अर्थ पा सकी हूँ। ऐसा अर्थ समझ में आने पर ही मेरे अंतर–मन ने मानो एक बीड़ा उठाया था कि आदि से लेकर अन्तिम–सत्य तक की कुल research की अनुभूतियों के हीरे–मोती में गुथी हुई, अनुभव–सरिता में निखारी हुई 'कौन थे वे' के दैविक–रहस्य की उज्ज्वलता को उनकी कृपा द्वारा सँवार दूँगी। फिर Identity cannot Identyfy itself की दैविक–दशा की यथार्थता में पिरोकर उनके दिव्य–देश भूमा की दिव्य–चौखट का नमन पाऊँगी। साथ ही उनकी अपेक्षा के अनुरूप अनन्त–यात्रा से विशुद्ध–माला को उनके चरणों में चढ़ाऊँगी। किन्तु यह क्या? उनकी दिव्य–चौखट पर नमन के साथ ही जब उन्होंने दैविक–चेतना को मुझ में अनुभूति के लिए जगाया तो मैं निहाल थी उनके मुखारविन्दु को निहार कर! क्योंकि वह विशुद्ध माला तो 'वे' धारणा ही किए हुए थे। उस समय मुझे चारों ओर मगनता का वातावरण क्यों मालूम पड़ा था, उसका राज़ भी अब मेरे समक्ष लेखन हेतु व्याप्त हो गया है– क्योंकि धरा ने जब उनके दिव्य–चरणों का चुम्बन अपने हृदय पर पाया तो उनके दैविक–चरणों के स्पर्श ने उसके भौतिक–स्पर्शों के बोझ को हर लिया था– तभी तो वह मगन हो गई थी वातावरण झूम उठा था। आकाश उनके दिव्य–अवतरण के स्थान की ऊँचाई देखकर मानो थिरक उठा था। और Divine Nature

अथवा दैविक–प्रकृति तो उनके सर्वव्यापी स्वरूप का दर्शन पाकर मानो सुधि ही बिसार बैठी थी। भूमा के देश की गत क्या कहिये उसने जब से धरा पर थिरकते दिव्य–विभूति के चरणों को देखा तो मानो सिर उठाना ही भूल गया। और युग? उसे तो यह भी विस्मृत हो गया था कि धरा पर भूमा का अंश या भूमा स्वयं अवतरित हो गया है। और हम प्राणिमात्र के हित पृथ्वी ने अंतिम–सत्य से जोड़ने वाला सहज–मार्ग रूपी दैविक–रत्न पा लिया था। इतना ही नहीं और भी बहुत है कहने के लिए। दैविक–आकर्षण का सहारा पाकर 64 **points** रूपी 64 सीढ़ियों की नसैनी का सम्बल पाकर आध्यात्मिक–यात्रा में से थकान शब्द को, शब्दकोष से ही निकाल दिया है। और? 'राह में अब कोई बंधन न आड़े आयेगे' यह सत्य तो स्वयं युग ने अपने प्राणों में उन दिव्य–छवि का दर्शन पाकर स्पष्ट कर दिया है। युग के प्राणों में समाई दैविक–छटा एवं दिव्य–प्रकाश से सारा 'सहज–मार्ग' जगमगा उठा है, विशुद्ध अवस्था में भीग गया है। भीग शब्द की भी यहाँ अपनी महत्ता है। बारीकी यह है कि दिव्य–छवि की सर्वव्यापी मौजूदगी ने युग के प्राणों को भक्ति–रस से भी सम्पन्न कर दिया है। जो अभ्यासी श्री बाबू जी महाराज की शरणागत् हुये सहज–मार्ग को 'लक्ष्य' की गम्भीरता के साथ अपनायेंगे उनके हृदयों को भक्ति–रस स्वतः ही भिगोने लगेगा। उनकी कुल **research** समस्त के हित अनुभूति–मई शिक्षा के रूप में सदैव प्राणिमात्र के हित उनके हृदयों में उज्ज्वल होती रहेगी। क्या आपने कभी ऐसी अनुभूतियों के रत्न से सुशोभित–आध्यात्मिक–विद्या या पूर्ण अनन्त–यात्रा–मय शिक्षा के अलौकिक–संगम की जानकारी पाई है? नहीं, क्योंकि प्राणी–मात्र के हित आदि से अनन्त तक की यात्रा देने के दैविक–संकल्प के साथ कोई अवतरण पृथ्वी पर उतरा ही नहीं है।

मानव–मस्तिष्क से परे हुआ, दिव्य–शक्ति की धारा में समाहित, किसी भी क्रिया के आवरण से अछूती सहज–मार्ग साधना का प्रथम योग–साक्षात्कार पाने पर हमें मिलता है। दैविक–वरदान रूपी इस योग में मैंने पाया कि मेरे बाबूजी अपने हृदय में समेटकर ईश्वरीय शक्ति के मुख्य बिन्दु में स्नान देकर जब बाहर निकालते हैं तब मैंने पाया कि मैं नहीं बल्कि पूर्ण ईश्वरत्व के सौन्दर्य–शक्ति के स्पर्श में डूबी मात्र एक Identity थी। यहाँ पर इस दशा के भेद में मैंने एक उत्तर पा लिया है कि आख़िर 'बाँधा सरकिल में अहं मिल्कियत वो क्या कहिये' का भेद क्या है? भेद तो स्पष्ट है कि ईश्वर में अहं नहीं है इसलिये उनका साक्षात्कार तो भक्तों ने पाया है–और साक्षात्कार पाने के बाद मानो विभोर होकर मस्त हो गये क्योंकि इसके पश्चात् फिर जाना कहाँ है? साक्षात्कार तो दुई का द्योतक है पाने वाला और ईश्वर। किन्तु मैंने पाया कि दिव्य–विभूति ने ईश्वर–प्राप्ति का लक्ष्य देकर मानो साक्षात्कार के बाद इस दैविक–चेतना के बिन्दु को जाग्रत रक्खा कि हमारा 'वतन' Ultimate अथवा भूमा है। इसलिये ईश्वरीय–शक्ति जहाँ से आई है तो उस शक्ति का स्पर्श पाकर ही हम वैसे हो सकते हैं जैसे कि दैविक केन्द्र में पहुँचने के लिए हमें होना चाहिये। यह दैविक–रहस्य कि बाबूजी ने साक्षात्कार के बाद क्यों ईश्वरीय–शक्ति के केन्द्र में स्नान दिया था। प्रथम वह अकेला है, एक है इसलिये स्नान के बाद हमारी भी मात्र एक अकेली Identity रह जाती है। बाबूजी की कृपा के इस दैविक–करिश्मा रूपी रत्न की शोभा तो अब तक गोपनीय ही रही क्योंकि 'साक्षात्कार' की दैविक–दशा के बाद कोई ले जाने वाला ही नहीं अवतरित हुआ। कबीर ने भी इस सत्य को अपने अनुभव द्वारा स्पष्ट किया था कि "हद–अनहद के बीच में रहा कबीरा सोय"। लेकिन उन्हें इसे आगे– अनहद के दर्शन या

यात्रा का सम्बल नहीं मिल सका। एक और अलौकिक कृपा एवं रहस्य को मैंने उजागर हुआ पाया है कि वैसे तो अभ्यासियों में अहं से परे होने की कभी गम्य ही नहीं थी, न है और न हो सकती है तो फिर आगे बढ़ते कैसे। आज बाबूजी का Divine संकल्प हमें अंतिम–सत्य की ड्योढ़ी का स्पर्श देने के हेतु हर क्षेत्र में, हर Circle में, हर Region में मौजूद है– साथ में दिव्य–विभूति की मौजूदगी के एहसास ने ही यह अनुभव प्रदान किया कि हमारे उद्धार के हेतु वे अहं से असंभव छुटकारे को हमारी जीत में बदलने के लिये स्वयं ही अहं के हर स्तर को मानो अपनी मुट्ठी में कैद करके हमें ईश्वरीय–शक्ति के केन्द्र में गोता दिया तो शक्ति में नहाई अहं से परे अचेतन Identity ही उनके साथ थी। एक अनुपम–रहस्य मैंने उनके द्वारा पाई अनन्त तक की यात्रा का, यह भी पाया है कि यात्रा में आध्यात्मिक–गरिमा के कुल क्षेत्र में लय अवस्था पाते हुये चलने से कुल–दैविक–शक्ति में भी हमारा पैराव कुछ इस प्रकार से होता रहता है कि अन्य भाई–बहनों को सैर कराते समय वहाँ की शक्ति द्वारा हर दशा का अनुभव उन्हें पूर्ण–यात्रा की दशा दिखाने में सक्षम होता है। मैंने पाया कि सहज मार्ग रूपी बिछौना, उस पर अंतिम–सत्य तक की दैविक–दशाओं की अनुभूति के साथ, हर स्तर की दैविक–शक्ति का समन्वय भरते जाना, यह श्री बाबूजी की दैविक research से योग पाये हुये भूमा की शक्ति द्वारा ही सम्भव हो पाया है। क्योंकि उन्हें दिव्य–संकल्प, आदि–शक्ति (भूमा) के केन्द्र के स्पन्दन द्वारा ही प्राप्त हुआ है। इतना ही नहीं यह मार्ग एवं समक्ष में फैली अनुभूतिमय समस्त के हित शिक्षा ही उनकी research की दिव्यता, अनूठापन, गहनता एवं प्यार भरी दिव्य–धारा का प्रसाद है। मानव–हित उनकी दिव्य research का उद्देश्य था हर स्तर की यात्रा देना और उसकी शक्ति से हमें भरते जाना ताकि

अन्य अभ्यासियों को लाने में हमें राह में पुष्प ही मिलें। हमें कुछ सोचना ही न पड़े। पुनः लेखन यही बोलने लगता है कि जैसे अनोखा Divine रत्न हैं बाबूजी, वैसी ही दैविक–रत्न–गर्भा है उनकी अनूठी research जिसके द्वारा आदि–यात्रा से लेकर अनन्त–तक की यात्रा के हर मुख्य–स्तर को चुनकर बाबूजी ने हमें बैठने का स्थान दिया है। साथ ही अन्य की शिक्षा हेतु वहाँ की शक्ति से charge भी किया है। क्या धरा ने कभी ऐसी दिव्य–शिक्षा का पसारा पाया था? क्या आकाश ने अपने से भी ऊँची शिक्षा को निहार पाने का सौभाग्य पाया था। क्या युग ने युग–प्रवर्तक भूमा के गोपाल की शक्ति को अपने में अठखेलियाँ करते हुए महसूस किया था? परन्तु आज उनका सहज–मार्ग system हर बात का उत्तर हाँ में देते हुये झूम उठा है। साथ ही आनन्द में विभोर थिरक उठी है धरा, झूम उठा है आसमान और प्राणों में समाये भूमा के गोपाल को महसूस ही नहीं बल्कि निहारकर गौरवान्वित हो उठा है युग।

जिन श्री रामचंद्रजी महाराज (यू.पी.) के नाम से पृथ्वी धन्य हो गई है, जिनके दिव्यागमन से धरा हमेशा दैविक नूर से आलोकित रहेगी उन परम–विभूति ने ही अपना स्पर्श देकर मेरी लेखिनी के लेखन को अमरत्त्व प्रदान किया है। तो सुनें– मैं श्री बाबू जी के रस कथन की व्याख्या ही नहीं, बल्कि अनुभव के बारे में ही लिख रही हूँ–

When Religion ends Spirituality begins (जब धर्म का अंत होता है तब आध्यात्मिकता का आरंभ)। यह सत्य स्पष्ट है कि मनुष्य सदा कर्मकाण्ड में लिप्त रहता है जबकि मानव का वास्तविक धर्म है ईश्वर को पाना। जिस घड़ी से हृदय को ईश्वर का स्मरण आता है, तब से उसे कोई कर्मकाण्ड नहीं सुहाता है।

बस लगन दर्शन की लग जाती है–भक्ति जाग उठती है– तभी धर्म, आचार–विचार को छोड़कर अपने असल अर्थ को पा जाता है। मानव का वास्तविक धर्म है कि वह ईश्वर को जाने। बस यही दशा होती है जहाँ बाबूजी के कथन की स्पष्टता हमें मिल जाती है अर्थात् When Religion ends Spirituality begins.

अब दूसरा कथन अनुभव सिद्ध होता है कि When Spirituality begins कैसा यथार्थ–कथन है कि मानो आध्यात्मिक–दशाओं की अनुभूतियाँ स्वमेव ही कुछ कहने को आतुर हैं। मैंने पाया कि आध्यात्मिकता की परिभाषा है 'साक्षात्कार'। ईश्वर का स्मरण आने पर दर्शन की लगन लग जाती है– भूला हुआ सम्बन्ध याद आ जाता है। इस दशा आध्यात्मिकता को अति शीघ्र हृदय में जगाने के लिए श्री बाबूजी महाराज द्वारा अभ्यासी–हृदय में पाई प्राणाहुति की विशुद्ध–धारा का प्रवाह आध्यात्मिक जननी के समान होता है। सहज–मार्ग में अभ्यासी की साधना को चरम–सीमा पर पहुँचाने हेतु साधना का आरंभ ही तीन सिटिंग्स में दैविक–प्राणाहुति–के प्रवाह द्वारा ही बाबूजी महाराज ने सम्पन्न किया है। साधना का प्रारंभ पाते ही हृदय में उनका स्मरण आते ही कहीं न कहीं वह उनकी सामीप्यता के अनुभव की छाया में पलने लगता है। श्री बाबूजी का यह कथन मैंने स्पष्ट अनुभव में पाया है तभी उनकी प्राणाहुति शक्ति की धारा के प्रथम स्पर्श का वर्णन मेरे गीत की पंक्ति में गुनगुना उठा था कि "जो शक्ति (ईश्वरीय) सबमें सोई थी, इंसानों में रमने वाली, उस शक्ति को जागृति देकर एक नया मोड़ देने वाले"। अब आगे देखें कि ईश्वर की याद में जागी हुई शक्ति को लगातार उनकी दैविक–प्राणाहुति के प्रवाह का सम्बल मिल जाता है। क्रमशः दैविक–सामीप्यता के स्पर्श की ताज़गी अभ्यासी–हृदय में भक्ति का रस एवं साक्षात्कार की ओर बढ़ने

की तन्मयता पैदा कर देती है। ईश्वर, भौतिकता से परे है और अभ्यासी का तन भौतिक है इसलिये तन की ओर forgetful दशा का अनुभव बताता है कि हमारा ध्यान हमें छोड़कर भौतिकता से परे परमप्रिय ईश्वर में प्रवेश पा गया है। इस भूल की अवस्था में जब एकाएक भौंचक हो जाने की अवस्था आती है तब बाबूजी ने मुझे लिखा था कि "खुशी है कि ज़मीन पर रहते हुए भी तुम्हारी रहनी अब प्रिय के अर्थात्–ईश्वरीय–देश में होने लगी है? अर्थात् सालोक्यता की दशा तुम पर छा गई है। उनके देश में रहनी पाकर मैंने पाया था कि साक्षात्कार की विह्वलता मानो फैलकर दैविक चरणों का स्पर्श पाने के लिये विभोर रहने लगी। और एक दिन! जब अति दैविक–सामीप्यता के अनुभव ने हमें उनकी ड्योढ़ी पर लाकर खड़ा कर दिया था फिर क्या लिखे लेखनी बेचारी जब कि यहाँ मौन ही मौन है। क्रमशः दैविक–भोर की अनुभूति में वह दिव्य–ईश्वरीय–छवि पगने लगी। फिर जब अनुभूति ने पूर्ण होकर आँखें खोलीं तो समक्ष में दिव्य अनुभूति की Reality अर्थात् 'साक्षात्कार' मानो अजब मुस्कुराहट लिये समक्ष में था और कहीं न कहीं बाबूजी के साथ होने का आभास देकर मानो अपने इस कथन को व्यक्त कर रहे थे कि 'When Spirituality ends, Reality begins' जिस प्रकार यह कथन सांसारिक–भाषा में सत्य की व्याख्या है कि "आध्यात्मिकता, विज्ञान की जननी है।" उसी प्रकार आध्यात्मिक–क्षेत्र में यह Reality का साक्षात्कार देकर फिर सदैव के लिये मौन हो जाती है। अब आगे देखें–

श्री बाबूजी का कथन कि 'When Spirituality ends, Reality begins' 'यह एक ऐसी दैविक–जादूमई दशा का द्योतक है जो अपने में अनूठी है और एक अजूबा यही रहा कि ईश्वर का साक्षात्कार तो भक्तों ने पाया है किन्तु यहाँ की मूल–शक्ति में प्रवेश पाकर इसका साँचा ईश्वरीय–मिलन आज तक कोई नहीं

पा सका है। यह गहन दैविक ईश्वरीय–भेद मेरे सन्मुख तब प्रत्यक्ष हुआ जब भूमा की शक्तिमय–दिव्य–विभूति श्री बाबूजी ने ईश्वर–प्राप्ति की दशा अर्थात् ईश्वरीय--शक्ति में भी क्षणिक–स्नान देकर निकाल लिया था तब मुझे लगा कि समक्ष में ऐसी ताज़गी व्याप्त थी मानो दशा भी नहाई–धोई, अब तक के पाये सभी अनुभवों से परे अछूती, अपने होने के भाव के स्पर्श से भी परे अकेली खड़ी थी। तभी! मानो एक मधुर मुस्कान युक्त दैविक–मुख ने मुझे बताया था कि– When Reality ends, Bliss begins इतना ही नहीं मानो आगे Bliss की दशा के लेखन हेतु दैविक चेतना भी दे गये थे।

श्री बाबूजी महाराज का कथन– When Reality ends, Bliss begins वास्तव में Bliss अनन्त–आनन्द की परिभाषा है, Bliss को सच ही Divine अंतर्मन कह लें जहाँ समस्त के हित प्यार बरसता है लेकिन कोई एक सौभाग्यशाली ही उस अनन्त–प्यार के रस का पता पाता है। दिव्य विभूति बाबूजी की दिव्य–हस्ती के प्रसाद स्वरूप ही आज इस परम–रहस्य को उज्ज्वल कर पाने के हेतु वह दशा और उसके दैविक–लेखन की गम्यता लेखनी को उनके ही अनुपम–गौरव से गौरवान्वित करने जा रही है। अपनी Divine Research द्वारा आज उन्होंने Divine अंतर्मन में छुपे दैविक--गतियों के रत्नों को अनमोल अनुभव में भरकर समस्त के हेतु बिखेर दिया है। इस दशा के समय श्री बाबूजी ने मुखे लिखा कि "यदि तुम्हारी दशा बेहाथ होने लगे तो पूजा के लिए बैठ जाना। वैसे तो इस हालत में सीखने वाले को सिखाने वाले का साथ हर पल ज़रूरी है क्योंकि अभ्यासी का असीमित–प्रेम का दीवानापन सीमा न लाँघ जाये। लेकिन अभी ऐसा सम्भव न हो पाने के कारण तुम्हारी देख–रेख की ज़िम्मेदारी हमारे लालाजी सा. ने ले ली है"। इस दशा की अनुभूतिमय–परिभाषा यही है

कि 'Bliss' प्राण है Divine के प्रेम का निर्भर–स्रोत का जो समस्त के हित व्याप्त है। इसलिये जब श्री बाबूजी हमें इस ओर के संकेत द्वारा इसके स्पर्श में भरपूर डुबोकर खड़ा करते हैं तो Bliss की परिभाषा बन जाती है "दीवानगी का दीवानापन"। वास्तविक स्थिति में मैंने पाया कि दीवानगी में तो हम संयत रह भी सकते हैं क्योंकि तब दीवानगी हमसे चिपकी होती है। किन्तु! दीवानगी का दीवानापन–बेतहाशा होता है; बेहाथ होता है क्योंकि यह अनन्य प्रेम की असहनीय अवस्था होती है। जानते हैं भाई यह तो दीवानगी का दीवानापन होता है, उसे कौन सँभाले सिवाय बाबूजी महाराज जैसी हस्ती के। क्योंकि तभी आगे सत्य–पद के आसन पर ही उन्होंने मुझे प्रतिष्ठित करके मानो समक्ष में अनन्त–यात्रा का द्वार खोल दिया था। तभी खिसियाई असहनीय–प्रेम की यह दीवानगी उस दिव्य–छवि का मुख निहारती रह गई। अब श्री बाबूजी का यह दैविक–कथन समक्ष में अपनी स्पष्टता को उजागर कर बैठा था कि 'Bliss का end अनन्त–यात्रा के आरंभ का द्वार है'। कहना न होगा कि 'अनमोल–दैविक–रत्न रूपी दशाओं की अनुभूतियाँ अब अनन्त–यात्रा हेतु, समस्त के हेतु, अनुभूतिमई शिक्षा के रूप में ही मेरे समक्ष में व्याप्त हैं। आज मैं आनन्द–मग्न हूँ कि श्री बाबूजी की अपेक्षा जो उन्होंने अपनी दैविक– research द्वारा समस्त के हित के लिए मुझसे की थी आज वही दैविक–अपेक्षा–अनुभूतिमय–लेखन के साथ समस्त के हित–सामने मौजूद है क्योंकि अब Bliss की दशा अपनी चरम–सीमा देकर अनन्त हो गई है।

अब देखें! समक्ष में लेखनी का सत्य–कथन ही कुछ कहने जा रहा है– कथन है लेखनी के दृष्टि नहीं है और दृष्टि के पास लेखनी नहीं है– इस अनहोनी को दिव्य–विभूति श्री बाबूजी की कृपा ने ही सम्भव कर दिया है। **वह भी कैसे?** जैसे शिक्षक का

प्रयास है कि अंतिम–सत्य तक की कुल research द्वारा उतारी गई दैविक–रत्न स्वरूपा–दशायें अब मौन न रहें बल्कि अनुभूतियों की भाषा में बोल उठें। तभी तो दिव्य–विभूति की अपेक्षा आज अनुभूति में भरे कुल दशाओं के रत्नों से धरा को सजाने जा रही है।

आगे देखें! अनन्त–यात्रा का प्रारंभ अन्तिम–सत्य (भूमा) के वैभव–देश का लेखन आज श्री बाबूजी द्वारा लिखित सेंन्टर–रीजन से शुरु होने जा रहा है। अब इसका वैभव क्या है? जिस अनन्त–यात्रा के अब तक द्वार का ही पता नहीं था तो प्रवेश केसे पाया जा सकता था। आज इस द्वार को खोल पाने में समर्थ–सद्‌गुरु लालाजी सा. के साहस व प्रेम का जब तक पृथ्वी और आकाश हैं एवं जब तक चर–अचर हैं तब तक यह युग उनका ऋणी रहेगा। इतना ही नहीं सृष्टि का मस्तक सदैव उनके चरणों में नत् रहेगा क्योंकि वे सृष्टि के गौरव हैं जिन्होंने सृष्टि को दिव्य–विभूति के मुकुट श्री बाबूजी से सुशोभित किया है। मैंने पाया है कि कुल आध्यात्मिकता उनकी चरण–रज में नहाई हुई मानो प्रेमाश्रुओं के पुष्प उनके चरणों में बिखेर कर कह उठी है कि "उनके दैविक–अवतरण से आध्यात्मिक–क्षेत्र में अनन्त–यात्रा का खुला द्वार पाकर मानो यशस्वी–प्रहरी की भाँति सत्य–पद पर विराजमान हो गया है। प्राणिमात्र को निमंत्रण देने कि अब भूमा के गोपाल बाबूजी की चरण–रज पाकर वह अनन्त गतियों का श्रृंगार पा गया है।

प्रथम तो यह सुनें कि अनन्त की यात्रा में गति न होने से अभ्यासी चलता नहीं है बल्कि स्वयं बाबूजी शेष बची Identity को अपने दैविक–संकल्प रूपी नाव में अपनी दिव्य–इच्छा–शक्ति द्वारा प्रवेश देते हैं। फिर क्या था पता ही नहीं चला कि कैसे सेन्टर रीजन में Swimming शुरू हो गई। अब यहाँ का वैभव क्या है–

लगता है कि 'प्राणी–मात्र के हित आदि–प्यार का अथाह सागर है। इसमें पैराव पाते हुए मात्र दैविक–चेतना ही हमें सजगता देती रहती है, यहाँ एहसास से भी परे आभास की। क्योंकि आभास है उनके होने का अथवा उनके दैविक स्पर्श का अछूता प्रतीक है जो मात्र वहाँ की बयार का अंदाज़ देते हुये हमें सजगता देता रहता है, किस बात की 'कि तू है'। यह है यहाँ की दैविक–दशा। श्री बाबूजी द्वारा लिखित Negation की हालत के प्रारंभ की। कदाचित् उपरोक्त दैविक–स्पर्श की सजगता पाकर ही मेरे गीत की पंक्ति गुनागुना उठी होगी कि "आँचर की कोर पै लिखा था 'तू है नाही रे'।" एक दैविक–दृश्य यहाँ यह भी उजागर हो जाता है कि जब प्रेम, भक्ति, ज्ञान, अनुभूति यहाँ तक कि कुल अहं के Circles भी ईश्वरीय–शक्ति में लय हो जाते हैं तब फिर यहाँ अनुभव की आत्मा अर्थात् Divine स्वयं मानो अपना परिचय अपनी ही भाषा में देता है, अर्थात् अभ्यास में तो हमारा अनुभव बोलता है और अब स्वयं Divine अपना जो कुछ भी परिचय शेष Identity को देता है वही Divine चेतना मेरी लेखनी में भर देती है और अपने श्री बाबूजी का दैविक–स्पर्श पाते रहने से ही लेखन को शब्दों की चयनता के साथ दैविक–रत्न रूपी यहाँ की दशा का वर्णन कर पाना सुलभ हो पाता है। पुनः–पुनः ऐसा लगता है कि मानो अनन्त–प्यार के सागर में कोई मुझ में से मुझे निकालकर संकल्प की नाव का अवलम्बन देता हुआ पैराता हुआ ले जा रहा है। Negation की विशुद्ध–दशा अर्थात्' शून्य (दशा) ने चादर ओढ़ी (Identity) की जा बैठा डोली (संकल्प की) पर और running प्रारंभ हो गयी। पीछे मुड़ कर देखो तो यह सहज–मार्ग साधना का गौहर अथवा सार था। जो अपनी अनुभूतियों के साथ परम–जीवन–सर्वस्व श्री बाबूजी में लय हो गया था। इतना ही नहीं आगे बढ़े तो इस दैविक–आश्चर्य में डूब जायेंगे क्योंकि जो समक्ष में अब है वह 'मालिक' द्वारा दिव्य–दृष्टि

द्वारा ही दृष्टिगत हो सकता है– क्योंकि समक्ष में कोई चीज़ नहीं, कोई अनुभूति नहीं लेकिन अचानक! मानो Divine संकल्प ने किंचित–दैविक–सजगता दी तो पाया कि मानो दैविक–आशीर्वाद का दौर था। नत–मस्तक, सजगता ने पाया समर्थ गुरु का वरदान एवं श्री बाबूजी के दैविक–संकल्प की पूर्णता के वरदान के साथ उनकी बिटिया के लिये प्यार भरी बरकतों की वर्षा थी। मानो सामने फैला Brighter World की महत्ता का क्षेत्र जहाँ दिव्य Liberated Souls की प्यार भरी आशीषें जो दिव्य–अवतरण की सेवा हेतु अपने अनुपम– अपरिमेव–आनन्द को भी तिलांजलि देते हुए आप उनका दिव्य–दर्शन पा रही थीं। अनन्त–यात्रा में अनन्त प्यार के सागर के इस दैविक–दशा के श्रेष्ठतम दर्शन का संकेत दे पाने में भी आध्यात्मिक–साहित्य मौन रहा है। आज दिव्य विभूति बाबूजी के चरणों का स्पर्श पाकर मेरी लेखनी ने आध्यात्मिक–साहित्य की इस मौन–अवस्था को सदा के लिये समाप्त कर दिया है। अनन्त–वैभव Centre Region के इस दिव्य–स्थान का पता श्री बाबूजी महाराज की research ने ही समस्त के हित प्रकट किया है। यहाँ की दशा का स्पर्श पाते हुए लेखनी इतना ही बताने जा रही है कि यहाँ के दिव्यानन्द पर भी काबू पाने की क्षमता वाली दिव्य–आत्मायें हैं जो जब चाहें तो परमानन्द में डूब जायें और जब चाहे दिव्य–विभूति की सेवा के लिए अपने को समर्पित कर दें। यह रही अनन्त–यात्रा के मध्य Brighter World में दैविक Mastery पाये हुये दिव्य–महापुरुषों के देश की Boundary-wall के स्पर्श द्वारा पाया रहस्य। अब सुनें कि यहाँ केवल Boundary-wall का स्पर्श ही मिला–प्रवेश नहीं तो सुनें यह उनकी दैविक research की निपुणता कि इसमें प्रवेश पाकर फिर बाहर कौन निकल पायेगा और boundary के स्पर्श ने प्रवेश की हालत का हवाला भी दे दिया और वहाँ की शक्ति का सम्बल भी दिला दिया। अब Divine

संकल्प की नाव आगे चलती है। Swimming में केवल उनींदी सी Identity की ही गुज़र बची थी। अथवा यूँ कहें कि Identity के प्रति यह उनींदा–होश भी उनकी दैविक– research की ही पावन–देन है–क्योंकि अनन्त–यात्रा में पैरी हुई अनन्य–गति में Swimming देते हुये ले जाने पर दैविक–रत्न–रूपी अनमोल–दशाओं की सजगता का योग देते जाना ही तो उनकी research की अनुपम खूबी है। उपरोक्त लेखन में उनकी research द्वारा पाई हुई Brighter World की दशा का उल्लेख भी मात्र उनकी कृपा द्वारा ही सम्भव हो पाया है। जिस परम–गति के मोड़ पर उनकी Swimming का रूप अब मिला था उसकी सहज–गति ही मानो अब मेरा होश बन गई थी अपना परिचय देने के लिए। अवाक्–स्थिति यह देख रही है कि बेहोशी को भी होश में लाने वाली शक्ति आने वाले–स्तर का ही हवाला दे रही थी। ऐसा लगता था कि मानो उनके संकल्प में डूबी Identity भी सौहार्द–भरी उस हालत का स्पर्श पाकर पिघल उठी थी–इसे मोटे शब्दों में दैविक–ममतामई अपनाइत कहा जा सकता है; जिसे पाकर मानो Identity भूली हुई याद को पाकर पिघल उठी थी। एक दिन! मैंने पाया कि अचानक पैराव की गति धीमी पड़ते–पड़ते थक गई और उस Divine संकल्प में, समाई Identity को ऐसे आगे ऐसे केन्द्र का दर्शन दिया कि जिसने उसे प्यार की स्वीकृति का स्पर्श देकर स्वयं से दूर कर दिया। अब उस दशा के आभास ने मानो श्री बाबूजी महाराज के इस कथन की स्पष्टता समक्ष में प्रदान की। "वह क्या और कैस Jerk था जिसने 'Identity cannot Identify itself' की अर्थात् गति–विहीन गति की दशा का स्पर्श का भान दिलाकर Divine संकल्प की नाव को पुनः पैराव दे दिया। कैसे लिखूँ इस गति के बारे में मानो एक विस्मृत–अवस्था को पाकर एक हो गये थे– जैसे गति विहीन–गति को पाकर Identity cannot Identify

अर्थात् दैविक--विस्मृत–आनन्द, विस्मृत– अवस्था में खो गई थी। कहते हैं मनुष्य की ऐसी--अवस्था पर तो इलाज बताया जाता है लेकिन आज उस दिव्य–अवस्था में पैराव देते हुये अपनी बिटिया को संसार में पूर्णतया duty निभाते हुए सचेत रखते हुये वे आज भी लिये चल रहे हैं। यह मात्र Divine का अजूबा है Divine का अनूठापन है जिसने ऐसी दिव्य–गति के अनमोल–रत्न को देकर–दशा की गरिमा को मानो स्वयं के दैविक–सौंदर्य की ओट दे दी हो। कौन चित्रकार दे पायेगा ऐसे दर्शन का हवाला। असंभव भी है क्योंकि चित्र रेखाओं का मोहताज है और यहाँ एक रेखा के खींचते ही दशा का सौन्दर्य छुप जायेगा। हाँ किन्तु मैंने पाया है कि ऐसी दिव्य–दशा तो उनकी कृपा में ही चित्रित है– अन्यथा कुछ नहीं है इसके समक्ष। अर्थात् श्री बाबूजी महाराज के कथनानुसार इस परम–गति–विहीन–गति की हालत को श्री बाबूजी महाराज के दैविक–कथन "Negation from Negation" के अंतर में ही मैंने व्याप्त पाया है।

आज यह लिखते हुए मुझे लग रहा है कि मानो इस लेखन का जो मैं लिखने जा रही हूँ अपने बाबूजी के प्यार में कृतज्ञ हुआ, मानो प्रेमाश्रुओं में भीगा हुआ है। सुनें– जब centre region की boundary पार होने के पहले स्वतः ही दृष्टि पीछे की ओर मुड़ गई तो एक और दैविक–गहन–रहस्य मैंने उज्ज्वल हुआ पाया है कि 'श्री बाबूजी महाराज की दैविक research जो आदि से लेकर अंतिम सत्य तक की अनन्त–यात्रा द्वारा सम्पन्न हुई है उसने राह के सारे bondages (बंधनों) को सदैव के लिये ही हटा दिया था। मेरे गीत की इस पंक्ति को लिखाकर मानो उन्होंने अपनी दैविक–मुहर लगा दी है कि 'राह में अब कोई बंधन न आड़े आयेंगे'। इतना ही नहीं – हर एक के लिये ईश्वर–प्राप्ति का मार्ग सहज और सरल बना देने के साथ ही समस्त के प्रति

उनके दैविक–प्यार की पसीजन ने भक्ति–रस से सरलता प्रदान करके सुलभ कर दिया है। सहज–मार्ग की परिभाषा का दिव्य–अनुभूतियों द्वारा जो दर्शन मैंने पाया है उनका आधार मात्र बाबूजी का दैविक–संकल्प है जो प्राणाहुति की सहज–धारा का निर्झर श्रोत है। फल–स्वरूप अंतिम–सत्य तक की अनन्त–यात्रा की दशाओं का गहन एवं छुपा हुआ दर्शन आज समस्त के हित समक्ष में व्याप्त होकर सुलभ हो गया है। युग दैविक–रत्न–गर्भा का वरदान पाकर मगन हुआ, समस्त के हित उज्ज्वल मस्तक हो गया है। तो अब हमें वरदान की परिभाषा भी तो जानने का परम सौभाग्य उन्होंने दिया है तो सुनें– 'जो चीज़ ईश्वरीय–खुशी द्वारा– Divine की ओर से हमें मिलती है वही दैविक–वरदान की संज्ञा का द्योतक है।'

अब सुनें सेंटर–रीजन की सीमा पार करते ही मानो बाबूजी के दैविक–संकल्प ने Jerk देकर मुझे दैविक–चेतना दी तो लगा कि कदाचित् प्रथम बार किसी ने महापार्षद की अवस्था अर्थात् "तुरियातीत' की गोद का स्पर्श पाकर आँख खोली हैं। अविरल–गति में समाहित भूमा अथवा ultimate के सात द्वार अथवा बाबूजी द्वारा लिखित सात rings तक आते ही मौन स्पन्दन में खुद मानो Identity भी सदा के लिए मौन हो गई थी। लगा कि मानो उस महत्–दैविक–द्वार से योग पाये हुये प्रहरी के सदृश सुशोभित महापार्षद की परम गति आने वाले समां में खोई हुई है। यहाँ की अनूठी दैविक–गति में मैंने पाया कि अविरल–गति में समाहित Identity के अभाव में वहाँ का समां lifeless था। तभी मानो दैविक–चेतना ने ही मुझे बताया कि मानो भूमा से सहज आता हुआ तेज ही यहाँ life दिव्य–चेतना की तरह से होता है– तभी बाबूजी का कथन इस दशा के रूप में– जिसका स्वतः स्पर्श ही अभ्यासी में जीवन का होश देता है। तभी बाबूजी का कथन इस

दशा के रूप में समक्ष में उज्ज्वल हो जाता है कि "lifeless-life" ही यहाँ दैविक बरक़त है। ज़रा सा इस विषय पर भी प्रकाश डालना यहाँ आवश्यक है कि 'दैविक–चेतना' क्या है?

दैविक–चेतना के विषय में अब तक आध्यात्मिक साहित्य का स्थान खाली ही रहा है। किन्तु अब दिव्य–छवि अपना हवाला खुद ही दे रही है। क्या कहने हैं ऐसे समां के, यह किस सौन्दर्य की छिटकन है जो आवश्यकतानुसार अनन्त–यात्रा में अनायास ही दिव्य–ज्योति के साथ, हमारे में प्रवेश करती है। आवश्यकता कब होती है? इसका प्रारम्भ तो भूमा के वैभव का आंकलन देने हेतु सेंटर–रीजन में पैराव शुरू होते ही प्रारम्भ हो जाता है। क्योंकि Identity अपने होने के भाव से रहित होने के कारण जब स्वयं की चेतना से ही विहीन (खाली) हो जाती है बस तबसे ही दिव्य–देश के गौरान्वित–वैभव का आभास पाने के लिए मैंने पाया कि मानो स्वयं बाबूजी ही हमारे में दैविक–चेतना का अनजाना योग दे देते हैं। उनकी दैविक– research के अनुरूप इस अनमोल–रत्न की गरिमा यही है कि हमारे लिए यहाँ का लेखन भी तभी सम्भव हो पाता है। एक अनुपम बात यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि दैविक–चेतना ही यहाँ का हवाला है तभी तो यहाँ का भेद दे पाती है। भला आप ही बतायें कि उनका पता सिवाय 'उनके' द्वारा उतारी हुई चेतना के अतिरिक्त कौन ग्रहण कर पायेगा– जबकि कोई है ही नहीं। दैविक–चेतना Divine की ही झलक है जो उनकी कृपा से मिलती है। इसलिये मैंने पाया कि उनके दैनिक–संकल्प की इस छिटक द्वारा ही उनका परिचय मानो 'वे' ही स्पष्ट कर रहे हैं। अब आगे लेखन के विषय में लेखनी ने स्वतः ही दशा से परे दशा के द्वार का दर्शन पाया है उसे ही समस्त के हित स्पष्ट करने जा रही है– सुनें! इससे पहले एक स्पष्टता देने हेतु मेरा लेखन मचल रहा है

जिसे मैं भूल गई थी। वह यह है कि लय–अवस्था की पूर्णता भी ईश्वर–प्राप्ति में 16 circles ego के सहित ईश्वरीय–शक्ति–केन्द्र में विलीन हो जाती है। इतना ही नहीं डूब जाने के बाद जब शरीर पानी की सतह पर उतराने लगता है तबसे मानो उस दशा का कथन हमें अपनी स्पष्टता दे देता है कि सांसारिक–रहनी जल में कमल के पत्ते सदृश हो जाती है। फिर प्रारम्भ होता है मेरे गीत की गुनगुनाहट भरा दर्शन अर्थात् 'हम तो मर कर जीते हैं', क्योंकि– जो 'जीत बन तू मिल गया'।

अब आगे बढ़ेंगे तो पायेंगे कि उनका दैविक–स्पर्श पाई लेखनी अब दशा का आधार न लेकर, द्वार के दर्शन की चौखट का ही आधार पाकर कुछ लिखने जा रही है तो सुने! यहाँ से श्री बाबूजी महाराज के लेखन में आये सात रिंग्स् के दैविक–वर्णन का सहारा लेकर ही उनके विषय को स्पष्टता देने जा रही है। वास्तव में ये सात–रिंग्स्, भूमा के अनन्त क्षेत्र में प्रवेश पाने के सप्त–द्वार के सदृश हैं– इनकी भी अपनी अद्‌भुत (uniqueness) है, दैविक निरालापन है। जानते हैं क्यों? भूमा के सौन्दर्य एवं शक्ति से पखारे हुए ये सप्त–द्वार अपने ही दिव्य–गरिमामय–दैविक–समां का स्वयं ही परिचय–प्रदान करके मेरी लेखनी के लेखन को दिव्यता का वरदान देंगे। सुनें–सर्व प्रथम उज्ज्वल होता है प्रथम द्वार अथवा पहला ring जो प्रशान्तावस्था में मौन, किन्तु source से आते हुए साम्य–तेज से कुछ इस तरह से योग पाये हुये हैं कि ऐसा लगा कि मानो यहाँ से होकर दिव्य–विभूति का अवतरण धरा पर पधारा है– यहाँ यह लिखना भी जरूरी है कि भूमा के क्षेत्र से जुड़े ऊपर के दो rings में उसका ही तेज है फिर तेज का तेज है। अंतिम–सत्य का एक दिव्य–रहस्य और समक्ष में मानो वहाँ से ही स्पष्टता देने के लिए उज्ज्वल हुआ था वह सुनें तो अवाक् रह जायेंगे। वह क्या है– मानो यही योग

आरंभ से लेकर सातों रिंग्स् अथवा द्वारों में मौजूद था जो दित्य–विभूति की धरा पर अवतरण के लिये दैविक मार्ग के सदृश है। यही कारण है कि 'सहज–मार्ग–साधना' का योग 'ध्यान में Divine मौजूद है' से योग पाकर क्रमशः सहज–धारा में समाहित हो जाता है। सेंटर–रीजन में यह योग बाबूजी के Divine संकल्प में समाहित होकर मानो हमें चेतन करता रहता है। अंत में यह योग Identity cannot Identify Itself की बेसुधी में खुद को छुपाकर–महापार्षद के पद पर ठहरकर मानो अपने घर (भूमा) के देश के द्वार में प्रवेश पाने हित, अनन्त–यात्रा की कुल दशा को पीकर मौन हो जाता है। समस्त दशाओं को absorb करके बहुत अकेली हो जाने के कारण, द्वार से छिटकते हुये असल–तेज को निहारते हुये, उस तेज में जब Negation from Negation की दशा योग पा जाती है, तो द्वार स्वतः खुल जाता है। यह गहन–रहस्य है उनके अवतरण का जिनके अवतरण ने धरा पर प्राणिमात्र के हित भूमा तक पहुँच पाने का योग–रूपी यह मार्ग आज समस्त के हित समक्ष में प्रशस्त किया है। आज श्री बाबूजी महाराज की research ने दैविक–निपुणता द्वारा ऐसे परम–दैविक–सौभाग्य का योग प्राणिमात्र के हित प्रदान करके, युग को सत्–युग अर्थात् ईश्वरीय–युग की संज्ञा प्रदान की है। एवं पृथ्वी को दैविक–रत्न का टीका लगाकर परम–सौभाग्य का आशिर्वाद दिया है। अब आगे भूमा के गोपाल की लीला में दूसरा Ring अथवा द्वार का दर्शन जब पुकारता है अपने दर्शन हेतु–तब क्या होता है सुनें। सर्व–प्रथम तो दर्शन की पुकार का अर्थ है दैविक–स्पन्दन का अनछुआ स्पर्श। मैंने पाया कि ज्यों–ज्यों अंतिम–सत्य (भूमा) की ड्योढ़ी का स्पर्श निकट आता जाता है, बाबूजी के दैविक–संकल्प का स्पन्दन मानो हमारा हौसला बन जाता है। क्योंकि जहाँ गुज़र की भी गुजर नहीं है वहाँ मानो

उनका ही यह हौसला हर द्वार में प्रवेश का समां बन जाता है। भूमा के द्वार से आती हुई उज्ज्वलता को भी मात करती हुई तम–अवस्था की उज्ज्वल चेतना मानो बाँह थामकर या यूँ कहें कि हमारा सहारा बनकर मानो हमें बेरोक–टोक प्रवेश दे देती है। ज़रा से ही आभास या परिवर्तन के साथ श्री बाबूजी हर द्वार ring का सूक्ष्म से सूक्ष्म दर्शन देते हुये उसमें प्रवेश देते हैं। फिर गति–विहीन गति की उज्ज्वलता देते हुये कुछ इस तरह से ले जाते हैं कि मेरे गीत की पंक्ति की धुन जहाँ स्वतः ही गुनगुना उठी थी कि 'संध्या हर धुन में "तू है मेरा" ये सुना हमने', उस अंतिम–सत्य की ओर से आती इस धुन के साथ ही मानो हम स्वतः खिंचते चले जाते हैं, अपने दिव्य–वतन (भूमा) की ओर, दिव्य ठिकाने की ओर। अब गति–विहीन–गति एवं powerless-power का विषय जब समक्ष में है तो फिर क्यों न इसे स्पष्ट हो जाने दिया जाये। जब अंतिम–द्वार भूमा की ड्योढ़ी के स्पर्श ने अपने स्पर्श की चेतना दी है तभी इस दैविक तथ्य की उज्ज्वलता को मैंने छू पाया था कि 'सत्य एवं तथ्य का अर्थ भी यहाँ विलीन हो जाता है'। रह जाती है श्री बाबूजी महाराज के दैविक–कथन की स्पष्टता जो समक्ष में उज्ज्वल हो उठी है कि "चारों ओर असल ही असल का पसारा है–देखो तो असल, छुओ तो असल, समझे तो असल। और 'असल'? जो था, है और एक सा रहेगा। वास्तविक बात तो यह है कि भूमा की अंतिम–सत्य की ड्योढ़ी ने मेरी लेखनी में मानो स्वयं ही खुद का परिचय भर दिया है कि 'असल–असल' है, अनुपम है, अनोखा है एवं दर्शन से परे होते हुए 'अनमोल–दैविक–रत्न–गर्भा है'। कदाचित् इस विषय में मेरी लेखनी अब विराम चाहती है। लेखन ने मौन धारण कर लिया है। लेखनी एवं इसे धन्य बनाने वाला दैविक–स्पर्श, मानो अंतिम–सत्य का ठिकाना पाकर होश खो बैठे हैं– जानते हैं

क्यों? क्योंकि लेखन भी अब अनमोल हो गया है अपने में अनमोल भूमा–रत्न (श्री बाबूजी) को सँजोकर आध्यात्मिक–क्षेत्र में, अनमोल–अनुभव–गतियों का पान करके अमर हो गया है।

अब वे अनमोल–दैविक–रत्न भी लेखन में शामिल हो कर पूर्णता पाये हुए हैं। उनके वर्णन से भी लेखनी को सम्पन्नता श्री बाबूजी ने ही प्रदान की है। जैसे अब तक मैंने अपनी अन्य–पुस्तकों में श्री बाबूजी द्वारा लिखित Heart Region (हृद–देश), Mind Region (हिरण्यगर्भ) एवं Centre Region (भूमा का वैभव–केन्द्र) के विषय में अनुभूति से सम्पन्न–लेखन दिया है। किन्तु अब? इनके साँचे दर्शन की वास्तविकता का भी लेखन समस्त के हित स्पष्ट करने के सौभाग्य से भी लेखनी को धन्य करने जा रही हूँ। उन दिव्य विभूति का पावन–स्पर्श पाकर जो दर्शन उतरा है वही आपके समक्ष है। जिनका हृद–देश है सर्व–व्यापक, सर्व–शक्तिमान, विराट Divine हृदय जिसमें विश्व समाहित है। अब Mind-Region अर्थात् हिरण्यगर्भ, जो सृष्टि की शक्ति की जननी है इसीलिये वे Divine हैं सर्वशक्तिमान हैं। सैंटर–रीजन भूमा के गौरव–स्वरूप–दिव्य–विभूति के अनन्त–वैभव का देश है। और भूमा, Ultimate अथवा अंतिम–सत्य ही उनके अपने वतन की प्रत्यक्षता से ओत–प्रोत है। वास्तव में उनकी दैविक research में समाया है 'उनका' साँचा दर्शन, जिसका यह संक्षिप्त सा लेखन है। मेरी आशा है कि यह संक्षिप्त किन्तु साँचा–दर्शन सृष्टि के मस्तक को उनके दिव्य–चरणों का स्पर्श अवश्य देगा। और 'ऐसा ही हो' उनका यह वरदान, नित्य–नई उमंगों के साथ फैलाव पाता रहेगा। एक वास्तविकता को मेरी लेखनी ने ओढ़ लिया है कि वास्तव में "लाला का लाल, भूमा का गोपाल ही इस पुस्तक में समाया हुआ 'अनमोल–दैविक–रत्न' हैं–जिन्हें प्राप्त कर वसुन्धरा आज दैविक रत्नों का श्रृंगार पाकर सौन्दर्यमयी हो गई है।

गति–विहीन–गति powerless-power एवं दैविक–आश्चर्य की गरिमा यह है कि यहाँ न रोशनी है न अंधेरा है तो फिर क्या है? सुनें–तम–अवस्था का ही पसारा है जो Divine तेज से स्वतः प्रकाशित है। वही दैविक–उज्ज्वलता ही यहाँ के तम–अवस्था के प्रकाशहीन– प्रकाश का स्वतः प्रकाश है। सुनती आई थी कि दैविक प्रकाश स्वतः प्रकाशित है। आज मेरे बाबूजी महाराज ने इस यथार्थता को भी समक्ष में उज्ज्वल कर दिया है। गति–विहीन–गति अपना परिचय यों दे रही है कि भूमा की परम शक्ति के स्पन्दन द्वारा अवतरित दिव्य–विभूति के धरा पर अवतरण का जो दैविक–मार्ग हुआ वहाँ से भूमा के अपूर्व एवं अनजाना तेज जो अब तक लुप्त था अब मार्ग को अपने देश के तेज से उज्ज्वलता दे रहा है। लालाजी सा. द्वारा प्रेरित स्पन्दन–शक्ति, जो प्राणिमात्र हित ईश्वर–प्राप्ति का लक्ष्य लेकर अंतिम–सत्य तक पहुँचाने का दैविक–नेह–निमंत्रण लेकर दिव्य–विभूति के रूप में पृथ्वी को दैविक–ईश्वरीय–धारा के प्रवाह से पावन बना रही है। वही भूमा के देश के द्वारों में गति–विहीन गति का यथार्थ परिचय है। अब इन सप्त द्वारों (Seven rings) में मौन–स्पन्दन स्वरूप powerless-power का परिचय–मात्र भूमा का आकर्षण ही है। मैंने पाया कि इन द्वारों का प्रवेश हमें रोकता नहीं है। मानो भूमा के द्वार के आकर्षण की ओर गति–विहीन–गति का रुख स्वतः ही मुड़ जाता है।

●